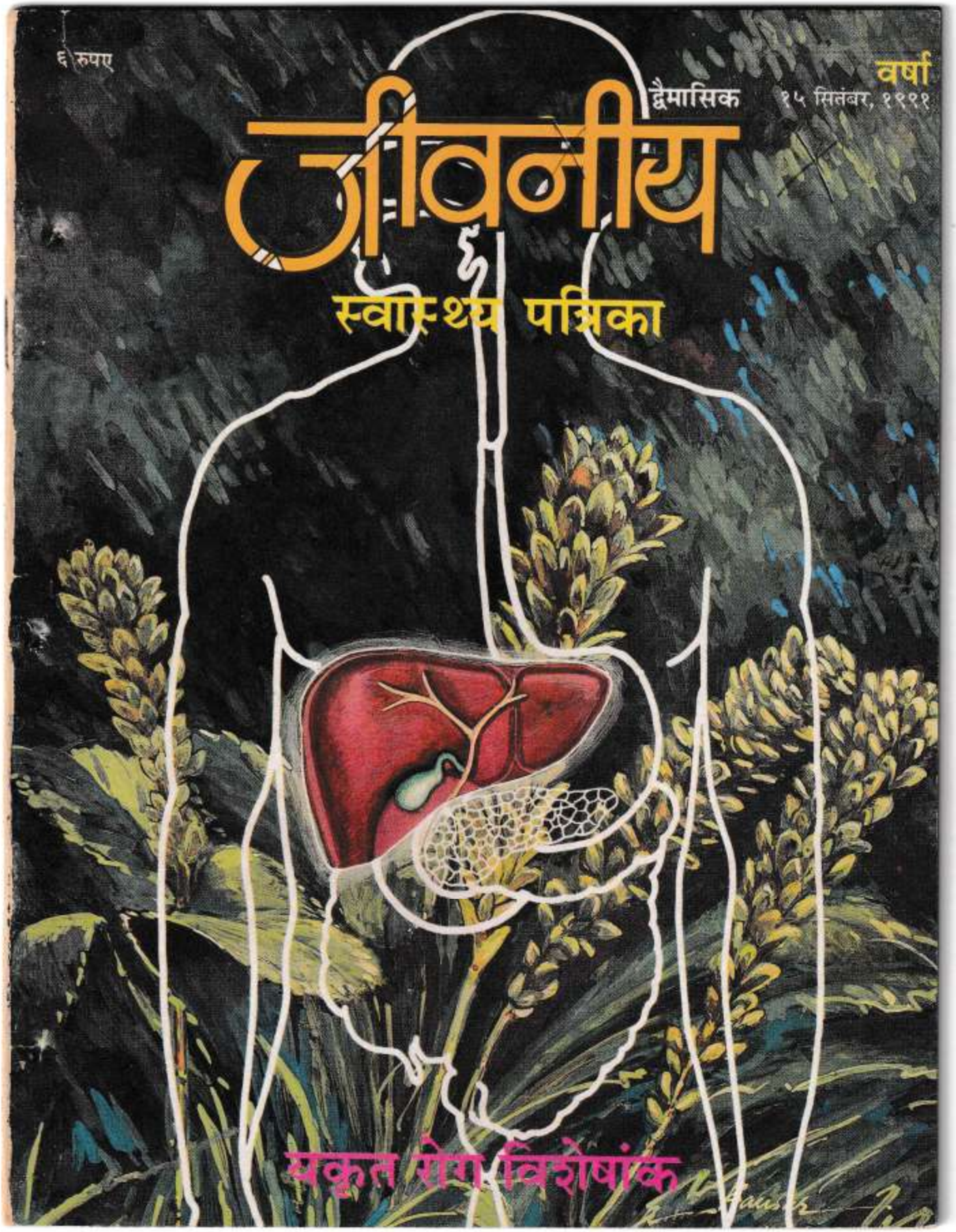

६ रुपए
वर्षा
द्वैमासिक
१५ सितंबर, १९९१
जीवनीय
स्वास्थ्य पत्रिका
यकृत रोग विशेषांक

जीवनीय द्वैमासिक

मानद संपादक मंडल (लखनऊ)
वैद्य लक्ष्मीकांत कुलकर्णी
वैद्य सुल्तान अली खां
पं. काशीनाथ गोपाल गोरे
वैद्य पूर्ण चंद जैन
डा. वेद प्रकाश
डा. मोहन बांडे
डा. पारस नाथ मिश्र
वैद्य राजकिशोर मिश्र
वैद्य बदलूराम रसिक
डा. रवि कुमार शर्मा
डा. हरि प्रकाश शर्मा
वैद्य वाचस्पति त्रिवेदी

कार्यकारी संपादक
डा. नरेंद्र नाथ मेहरोत्रा

संयोजक
पं. माधवाचार्य

संपादकीय सहायक
वैद्य उमेश चंद्र शर्मा
कु. वीना टंडन

साज-सज्जा
श्री अली कौसर
संदीप सेन गुप्ता

वितरण - विज्ञापन सलाहकार
श्री वाषिक एफ. रहमान

इस पत्रिका के लिये कापार्ट से मिले अनुदान के हम आभारी हैं

संपादकीय कार्यालय
लो. स्वा. प. सं. स.
ई - III/२५०, सेक्टर एच
अलीगंज, लखनऊ - २२६०२०
फोन - ०५२२-७७५६८

वर्ष २, अंक १
१६ जुलाई - १५ सितम्बर, १९९१

जीवनीय के चंदे की दरें

एक प्रति	६ रु.
वार्षिक	३० रु.
द्विवार्षिक	५५ रु.
त्रैवार्षिक	८० रु.
आजीवन	३५० रु.

इस पत्रिका के कम्पोज़र
विनायक
सी- १५/१०, पेपर मिल कालोनी,
निशातगंज लखनऊ।

लोक स्वास्थ्य परंपरा सवर्धन समिति की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक डा. नरेन्द्र नाथ मेहरोत्रा द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, २५७, गोलागंज लखनऊ - १८ से मुद्रित तथा ई -III/२५०, सेक्टर एच, अलीगंज, लखनऊ - २० से प्रकाशित, संपादक डा. नरेन्द्र नाथ मेहरोत्रा

संपादकीय सलाहकार समिति
सिद्ध वैद्य ब्रहमानंद स्वामिगल, कोयंबटूर
हकीम अल्ताफ अहमद आज़मी, नई दिल्ली
डा. गीता बामेजई, नई दिल्ली
वैद्य विवेकानंद पांडे, नई दिल्ली
वैद्य भगवान दाश, नई दिल्ली
वैद्य बृहस्पति देव त्रिगुण, नई दिल्ली
वैद्य मायाराम उनियाल, नई दिल्ली
श्री गंगा राम जानू आवारी, नासिक
वैद्य शिव कुमार मिश्र, पीलीभीत
डा. उमा, बंगलूर
हकीम सैयद खलीफतुल्लाह, मद्रास
हकीम सैफुद्दीन अहमद, मेरठ
वैद्य (श्रीमती) श. कोपिकर, मुंबई
वैद्य रमेश म. नानल, मुंबई
वैद्य भास्कर वि. साठ्ये, मुंबई
वैद्य नरेन्द्र सो. भट्ट, मुंबई
वैद्य बी. बी. म्हैस्कर, बड़ोदरा
वैद्य रामहर्ष सिंह, वाराणसी

लोक स्वास्थ्य परंपरा संवर्धन समिति
रजिस्टर्ड कार्यालय
पो. बा. ७१०२ रामनाथ पुरम्
कोयंबतूर - ६४१०४५
फोन : (०४२२) २३१८८, २६९५२

उत्तर क्षेत्रीय कार्यालय
डॉ. भारतेन्दु प्रकाश
विज्ञान शिक्षा केन्द्र, ४२ सिविल लाइन्स,
बाँदा - २११ ००१ फोन : (०५१९२) २५८७

पश्चिम क्षेत्रीय कार्यालय
द्वारा एकेडमी ऑफ डेवेलपमेन्ट साइन्सेस्,
ग्रा. व पो. कशैले, ता. करजट
रायगढ़, महाराष्ट्र

दक्षिण क्षेत्रीय कार्यालय
द्वारा पी. पी. एस. टी. फाउंडेशन
२९, IV मेन रोड, गांधी नगर, अड्यार
मद्रास - ६०० ०२० फोन : ४१८१६६

मध्य भारत कार्यालय
श्रीमती साधना काले
बी-२, पुष्पगंधा फ्लैटस्, आशा मंगल के सामने,
धरम पेठ, नागपुर - ४४० ०१०
फोन : (०७१२) ५३५७३०

संपादकीय

देशी चिकित्सा पद्धतियों में रोगों के उपचार के साथ-साथ व्यक्ति के सम्पूर्ण स्वास्थ्य पर विशेष महत्व दिया जाता है। इसी कारण ऋतु-चर्या, दिन-चर्या, पथ्यापथ्य सहित आहार-विहार के अनेक पहलुओं आदि पर इन चिकित्सा पद्धतियों का ज्ञान आधुनिक ऐलोपैथिक चिकित्सा पद्धति की अपेक्षा कहीं विशद एवं गूढ़ है - ऐसी वास्तविकता को दिन-ब-दिन और अधिक मान्यता मिलती रही है। हालाँकि यह सम्भव है कि व्यवहार के स्तर पर इन परम्पराओं में कुछ विसंगतियाँ या अपुष्ट मान्यताएँ भी घर कर गयी हों जिनकी पहचान एवं परीक्षण करके उनमें सुधार करना या दूर करना भी आवश्यक होगा।

हमारा आशय पद्धतियों की परस्पर तुलना से कदापि नहीं है पर यह दुर्भाग्य का विषय है कि निदान और उपचार के क्षेत्र में यद्यपि अन्यत्र विश्व में (जैसे - चीन, वियतनाम, थाइलैण्ड, इण्डोनेशिया आदि में तो विशेषकर) कम से कम कुछ विशेष रोगों में तो देशी चिकित्सा पद्धतियों में उपलब्ध उपचारों की प्रामाणिकता को और महत्व दिया जा रहा है, पर भारत जैसे मजबूत परम्परा के देश में इन उपचारों की जन-जन में पैठ होने के बावजूद भी अभी तक काफी उपेक्षा की जाती रही है।

इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए लोक स्वास्थ्य परम्परा संवर्धन समिति ने कुछ विशेष रोगों के देशी पद्धतियों द्वारा उपचार के विषय में विस्तृत जनसंख्या स्तर पर परीक्षण एवं संवाद आदि के कार्यक्रम शुरू किये हैं। यकृत के सामान्य रोग पीलिया (कामला) पर इसी सिलसिले में न केवल एक राष्ट्रीय गोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है वरन् इस विषय पर जीवनीय का यह विशेषांक भी समर्पित है।

यद्यपि पीलिया रोग के कई कारण हो सकते हैं। अधिकांश रोगी दूषित आहार-विहार के फलस्वरूप विषाणुओं के संक्रमण से ही ग्रसित होते हैं। आधुनिक ऐलोपैथी का मत है कि इस तरह के अधिकांश रोगी आहार-विहार का ध्यान रखने मात्र से स्वतः ठीक हो जाते हैं अतः उन्हें दवा की आवश्यकता नहीं होती। पर यह भी कटु सत्य है कि ऐसे अधिकांश रोगी कई-कई दिन तक दुर्बलता के कारण कुछ भी करने में अक्षम रहते हैं और कई बार थोड़ी सी भी असावधानी या लापरवाही से रोगी की मृत्यु तक हो सकती है। यद्यपि अपने अधिकांश रोगियों को ऐलोपैथी डॉक्टर भी अब "लिव-५२" जैसी पेटेंट आयुर्वेदिक दवाएँ देने लगे हैं पर यह भी सच है कि पीलिया जैसी बीमारी में रोगी द्वारा अभी भी देसी चिकित्सकों से उपचार लेना आम बात है। यहाँ तक कि गाँवों ही नहीं शहरों में भी पीलिया के झाड़-फूँक के उपचार करने वालों के पास भी रोगियों की लम्बी कतारें देखी जा सकती हैं।

यद्यपि हमारा तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि सभी प्रकार के झाड़-फूँक एवं अन्धविश्वासों को बढ़ावा दिया जाए, पर यह भी तो एक प्रकार का अन्धविश्वास ही है कि पीलिया में देशी चिकित्सा की कई मान्यता प्राप्त औषधियों के प्रयोग पर तो उन्हें आपत्ति होती है जबकि उन्हीं औषधियों के आधुनिक कैप्स्यूल के रूप में पेटेंट औषधियाँ देने में वे कतई नहीं हिचकिचाते। समय की माँग है कि हमारे आधुनिक ऐलोपैथिक चिकित्सकों को भी इन उपचारों के सही प्रसार में सहायता करनी चाहिए, चाहे वे उन्हें स्वयं अपनाने से पहले अपनी पद्धति से परीक्षण की प्रक्रिया अपनाते रहें। कम से कम ऐसी स्थिति में देशव्यापी प्राथमिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों में तो इनके प्रयोग से जन-साधारण को वंचित न रखा जाए।

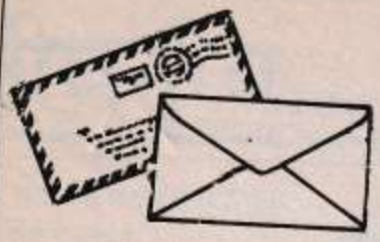

पाठकों के पत्र

सम्पादक महोदय,

मैंने रेलवे स्टेशन से जीवनीय का अंक ६ खरीदा और उसे अन्त तक अच्छी तरह पढ़ा। उसमें प्रकाशित सम्पादक मण्डल तथा सम्पादकीय सलाहकार समिति में बड़े-बड़े वैद्यों के नाम भी रुचि से पढ़े। लेकिन पत्रिका में बहुत उच्चकोटि के लेख न देखकर बहुत दुःख हुआ।

इसके अतिरिक्त पत्रिका में "धनिया" तथा "फालसा" इन दोनों लेखों के साथ रंगीन चित्र देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। मैं यह बात अवश्य कहना चाहता हूँ कि हर पत्रिका में लाभकारी अनुभव तो प्रकाशित होते हैं लेकिन हानिकारक अनुभव कोई प्रकाशित नहीं करता है।

इस बार यह अंक पढ़ने से यह आभास होता है कि जीवनीय के सम्पादक मण्डल ने हानिकारक अनुभव भी प्रकाशित करने का निश्चय किया है। इसलिए मैं सम्पादक मण्डल से यह अनुरोध करता हूँ कि शीघ्र ही ऐसे लेखों को प्रकाशित करने की व्यवस्था करें। इससे जीवनीय का प्रचार तथा प्रसार तो बढ़ेगा ही और साथ ही साथ पाठकों को अच्छे लेख भी पढ़ने को मिलेंगे।

वैद्य भानुप्रताप आर. मिश्रा, गुजरात

आपकी पत्रिका का विज्ञापन पढ़कर उसे खरीदने की इच्छा हुई लेकिन यह यहाँ उपलब्ध नहीं हो पाती है। अतः आपकी पत्रिका डाक द्वारा मंगवाना चाहता हूँ। कृपया इसकी समस्त जानकारी प्रेषित करने की कृपा करें कि इसका वार्षिक सदस्यता शुल्क क्या है। यह सब जानकारी शीघ्र उपलब्ध कराने की कोशिश कीजिये।

अजीत कुमार साहू, जौनपुर

हमें यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आप के द्वारा मातृ-भाषा हिन्दी में एक स्वास्थ्य सम्बन्धी पत्रिका का नियमित प्रकाशन किया जा रहा है। मैं पत्रिका की एजेन्सी लेकर अपने क्षेत्र के पाठकों के लिए पत्रिका उपलब्ध कराना चाहता हूँ ताकि वे इससे लाभ उठा सकें।

डी. सिंह, हिसार, हरियाणा

आपके द्वारा प्रकाशित पत्रिका जीवनीय का ग्रीष्म अंक पढ़ा। मुझे पत्रिका इतनी अधिक पसन्द आई कि मैं इसके पूर्व के समस्त अंकों को शीघ्र पा लेना चाहता हूँ।

डॉ. धीरेन्द्र कुमार शर्मा, दूल, कानपुर

जीवनीय का हर अंक निराला एवं ज्ञानवर्द्धक होता है। मैंने आपको १२ नये सदस्यों के नाम व पते दिये हैं,आप पत्रिका का ताजा अंक भेजकर उनको भी पत्रिका का लाभ उठाने का मौका दें।

डॉ. छोटे लाल शाह, बम्बई

पत्रिका का शरद अंक देखने को मिला। पत्रिका पढ़कर खुश हुआ। आप जैसा महान व्यक्ति हमारे आयुर्वेद को अभी तक बचाए हुए हैं और प्रसार भी करते हैं। भगवान श्रीराम की कृपा से आपका अनुष्ठान दीर्घस्थायी हो। यदि यह जीवनीय पत्रिका हिन्दी में प्रिन्ट होती है तो कृपा करके हिन्दी भाषा की पत्रिका भेजेंगे, यदि इस भाषा में प्रिन्ट नहीं होती है तो अंग्रेजी पत्रिका भेजेंगे।

भाग्यवन मेहर, बोलनगिर, उड़ीसा

आपकी पत्रिका "जीवनीय" का एक अंक मुझे लखनऊ महोत्सव, बेगम हज़रत महल पार्क के मेले में उपलब्ध हुआ था। पत्रिका मुझे बहुत पसन्त आई और रुचिकर लगी। अन्य लोगों और मेरे सम्बन्धियों ने आपकी इस प्रकार की पत्रिका के प्रकाशन के लिए बहुत प्रशंसा की। आजकल समाज में गिरते हुए स्वास्थ्य के सुधार के लिए यह प्रयास और प्रयत्न सराहनीय है इसकी जितनी प्रशंसा की जाए, कम है।

मैं तो इस पत्रिका की नई व पिछली सभी प्रतियों को प्राप्त करने का इच्छुक हूँ।

रमेश चन्द्र दीक्षित, मैनपुरी

इस अंक में

वर्षा ऋतु और रोगों से बचाव ४
वर्षा ऋतु में दमा ६
पक्षाघात : बचाव एवं उपचार १७
योग : साधना या व्यायाम १९
बरसाती फुंसियां २१
यूनानी चिकित्सा के गौरव-एविसिना ३५
आहार व हमारा स्वास्थ्य ३८
लंघन में उपयोगी फलाहार ४०
रक्तचाप की घरेलू चिकित्सा ४२
पारंपरिक वैद्य से साक्षात्कार ४६
ग्रहों का शरीर पर प्रभाव ४७
कैंसर की आयुर्वेदिक दवा ३७

यकृत् रोग विशेषांक

आधुनिक मतानुसार यकृत रोगों के कारण ७
यकृत, पित्त और अग्नि ९
कामला के अनुभूत उपचार १०
कामला चिकित्सा के कुछ अनुभव १२
यकृत की रचना और कार्य १३
पित्त एवं उसके कार्य २५
पीलिया रोग में देशी दवाओं का प्रभाव ३६
पीलिया रोगी का आहार-विहार ४४

औषध द्रव्य

द्रोण पुष्पी २३
पीलिया में लाभकारी कासनी २५
नवजीवन दायी रसायन - पुनर्नवा २९
हींग ३१

आहार-द्रव्य

नाड़ी का साग ३३

स्थायी स्तम्भ

दादी माँ के नुस्खे २६
पुरानी मदिरा नई बोतल - रीठा २८
पुस्तक समीक्षा ३०
ज्ञान कोष - भूताग्नि ३४
पत्र-पत्रिकाओं से ४८
मधु संचय ४९
शब्द कोष ५१
मस्तराम ५२

वर्षा ऋतु

संभावित रोग और उनसे बचाव

वैद्य रामानंद मिश्र, लखनऊ

रोग शारीरिक एवं मानसिक दो प्रकार के होते हैं परन्तु शारीरिक रोगों से मानसिक विकार एवं मानसिक रोगों से शारीरिक विकार उत्पन्न होते हैं और इस प्रकार रोग तन और मन दोनों को ग्रसते हैं। रोग शरीर एवं मन दोनों को पीड़ित करते हैं फलस्वरूप मनुष्य दुखी रहता है और उसकी चिकित्सा के लिये विशेष उपाय करता है जिससे धन व्यय होता है। यह भी आवश्यक नहीं कि धन व्यय कर चिकित्सा कराने पर रोग दूर हो ही जाय। इसलिये ऐसा उपाय करना चाहिये कि रोग उत्पन्न ही न हो। इस रोग अनुत्पत्ति हेतु सम्पूर्ण विश्व में विभिन्न प्रकार के उपाय किये जा रहे हैं और उसके लिये बहुत अधिक धन व्यय किया जा रहा है। आयुर्वेद में ऐसे आहार-विहार के सेवन का निर्देश दिया गया है जिसमें कि बिना धन व्यय किये सामान्य दिनचर्या का पालन करते हुये रोगों की उत्पत्ति को रोका जा सकता है।

जो नित्य प्रति हितकारी आहार एवं विहार करता है, अत्यन्त सोच-विचार के बाद जो उचित प्रयत्न करता है, जो इन्द्रियों के विषयों में आसक्त नहीं रहता उसे शारीरिक रोग नहीं होते। हिताहार एवं विहार मनुष्य की प्रकृति तथा ऋतुओं के अनुसार होने चाहिये। यहाँ पर वर्षा ऋतु में ऐसे हितकर आहार-विहार का सेवन तथा अहितकर आहार- विहार के परित्याग के विषय में संक्षेप में वर्णन किया गया है जो वर्षा ऋतु में उत्पन्न होने वाले रोगों को रोकता है। इसी को वर्षा ऋतुचर्या कहा जाता है। विभिन्न

भैया लाठी लेकर चलते तो खुले सीवर का गड्ढा तो पता चलता.

ऋतुओं का वनस्पतियों, मनुष्यों तथा अन्य जीवधारियों पर विभिन्न प्रभाव पड़ता है। जिससे उनकी जैविक क्रियाओं में परिवर्तन होते रहते हैं जो कि उनके स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते हैं। इन जैविक परिवर्तनों के फलस्वरूप मनुष्य स्वस्थ अथवा रोगी रहता है।

वर्षा ऋतु में होने वाले रोग

वर्षा ऋतु में नमी रहती है शीतल पूर्वी हवाएं चलती हैं जलवृद्धि होती है आकाश बादलों से ढका रहता है। इन कारणों से वायु दोष प्रकुपित होता है और अग्नियाँ क्षीण हो जाती हैं। जिससे मनुष्य का बल (व्याधि -क्षमत्व) कम हो जाता है। बल के कम होने से, विभिन्न प्रकार के कृमि, जीवाणु एवं विषाणु की वृद्धि होने से मनुष्य नाना प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो सकता है। जैसे- आमवात, सन्धिवात, वातज्वर, वातकफज्वर आदि व्याधियां, अग्नि के विषम होने से विसूचिका, अतिसार, प्रवाहिका, आध्मान, विदाह, कामला, कृमिरोग जलवायु में आर्द्रता तथा शीतलता के कारण श्वास-कास, प्रतिश्याय, अरोचक, आलस्य, अंगमर्द तथा पिंडिकाएं एवं त्वचा के अन्य रोग उत्पन्न होते हैं। इनमें से अधिकांश रोग संक्रामक रूप धारणं कर लेते हैं। जितनी व्याधियां वर्षा ऋतु में होती हैं उतनी व्याधियां सम्भवतः अन्य ऋतुओं में नहीं होती। इन से बचने के लिये आयुर्वेद में ऋतुबद्ध आहार-विहार एवं विधि- निषेध बताया गया है।

आहार

वर्षा ऋतु में हल्का, सुपाच्य, दीपन एवं

पाचन अन्नपान का सेवन करना चाहिये जैसे पुराने चावल, गेहूं, जौ तथा मूंग। मांसाहारी व्यक्ति को जांगल पशु पक्षी जैसे – हरिण, कालातीतर, बर्टर, गौरेया, चकोर, मुर्गा, तथा कबूतर के मांस रस को तेल, सोंठ, पिप्पली, कालीमिर्च से प्रसंस्कृत कर (छौंक) सेवन करना चाहिये तथा शाकाहारी व्यक्ति को मूंग के सूष को इन्हीं द्रव्यों से प्रसंस्कृत कर लेना चाहिये। भोजन खट्टा, नमकीन तथा स्निग्ध (तेल या घी से युक्त) होना चाहिए। शाकों में पुनर्नवा, लता करंज, बैंगन, परवल, बेल, रास्ना, लहसुन, प्याज, हींग एवं जीरे, अदरख का प्रयोग करना चाहिये। मधु का प्रयोग अधिक मात्रा में करना चाहिये यहाँ तक कि सभी खाने–पीने की वस्तुओं में मधु मिलाकर प्रयोग करें। जिस दिन वर्षा एवं वायु अधिक हो उस दिन शुष्क, हल्का, स्निग्ध, उष्ण, अम्ल तथा नमकीन पदार्थों को सेवन करें। कूप, सरोवर के जल को उबालकर ठंडा करके पीना चाहिये।

विहार

पेट में दाह उत्पन्न होने पर या पित्त के अन्य लक्षण उत्पन्न होने पर विरेचन करना चाहिये। यदि पित्त शान्त न हो तो रक्त दूषित हो जाता है फलस्वरूप रक्तज रोग जैसे मुखपाक, नेत्र पाक, नासिका एवं मुंह से दुर्गन्ध आना, दद्रु, विसर्प, विद्रधि, कण्डू, फुन्सियाँ, चकत्ते, कुष्ठ, चर्मदल आदि त्वचा के रोग, वातरक्त, दुर्बलता, शिरःशूल, भोजन में विदाह, खट्टी डकार आना, थकावट, स्वरभेद, तन्द्रा, निद्राधिक्य आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इनसे बचने के लिए रक्त पित्तनाशक उपाय जैसे विरेचन, उपवास तथा रक्तमोक्षण करना चाहिए। त्वचा में रोग उत्पन्न होने से बचने के लिये शरीर को रगड़कर सुखाना चाहिये। गीले वस्त्र न धारण करें। उबटन, तैलाभ्यंग तथा स्नान करना चाहिये। पुष्पमाला आदि सुगन्धित द्रव्य धारण करें। अगरबत्ती का प्रयोग करें तथा पैदल न चलें। ऐसे स्थान पर रहना चाहिये जहां सर्प, बिच्छू, कनखजूरा आदि का भय न हो। धुएँ रहित अंगीठी वाले कमरे में रहना चाहिये। हल्के, शुष्क एवं स्वच्छ वस्त्र धारण करना चाहिये।

वर्ज्य आहार – विहार

सत्तू, दिन में सोना, ओस में या वर्षा में सोना, बैठना व घूमना नहीं चाहिये। नदी के जल का पान एवं स्नान, व्यायाम, धूप में बैठना तथा मैथुन भी निषिद्ध है।

वर्षा ऋतु में इस आहार–विहार से जिसे, वर्षा ऋतुचर्या कहते हैं, इस ऋतु में होने वाली व्याधियों को उत्पन्न होने से रोका जा सकता है।

वर्षा ऋतु में लाभकारी सुझाव

वैद्य मनमीत सिंह, लखनऊ

- *इस मौसम में भोजन ताजा व गरम ही लें। रात्रि का भोजन ज्यादा देर से न लें क्योंकि बरसाती कीड़े प्रकाश के आस–पास मंडराने लगते हैं जिनके भोजन में गिरने की अधिक सम्भावना रहती है।*
- *भोजन के साथ अदरक, प्याज, लहसुन, जीरा व सौंफ का प्रयोग हितकर होता है।*
- *वर्षा ऋतु में चने के सत्तू की बनी रोटी (भौरी) लाभकर होती है इसके लिये चने के सत्तू में जीरा, मिर्च, लहसुन, हींग आदि मिलाकर फिर उसमें हरी धनिया, अजवायन, कलौंजी, अदरक, प्याज डालते हैं। इन सबको एक साथ गेहूँ के आटे की छोटी–छोटी लोइयों में भरकर कंडे की आँच में पका लेते हैं और जब पक जाए तब इसमें घी मिलाकर खाएं।*
- *भोजन के बाद शहद का सेवन लाभकर होता है।*
- *वर्षा ऋतु में जल दूषित रहता है अतः उसको उबालकर, ठंडा करके पिएं।*
- *दूषित पानी पीने से पीलिया, दस्त, कृमि आदि रोग होने की अधिक सम्भावना रहती है।*
- *वर्षा ऋतु में साफ पानी में अच्छी तरह से स्नान करके, शरीर को साफ व सूखे तौलिये से पोंछना चाहिए। ऐसा न करने पर त्वचा के रोग जैसे – दाद, खाज, खुजली आदि हो जाते हैं। इसी लिए नदी, तालाब आदि में स्नान न करें।*
- *पहनने वाले कपड़े पूरी तरह से सूखे होने चाहिएं।*
- *वर्षा में भीग जाने पर गीले वस्त्र उतारकर शरीर को तौलिये से पोंछ कर दूसरे सूखे वस्त्र पहन लेने चाहिएं नहीं तो सर्दी–जुकान होने का डर रहता है क्योंकि भीग जाने से शरीर के तापक्रम में अचानक कमी आ जाती है जो नुकसानदायक है।*
- *रात्रि में खुली छत पर नहीं सोना चाहिए।*
- *इस ऋतु में जगह–जगह पानी भर जाता है अतः रास्ते में गड्ढे का पता चलाने के लिए साथ में एक छड़ी रखें ताकि दुर्घटना से बच सकें। इसीलिए गाँवों में लोग घर से बाहर निकलते समय साथ में बेंत या लाठी अवश्य रखते हैं।*

वर्षा ऋतु में दमा

वैद्या शैलजा कुमारी, लखनऊ

वर्षा ऋतु में विसर्ग काल का प्रारम्भ होता है। इस काल में मनुष्य का शरीर काफी दुर्बल हो जाता है। इस ऋतु में दूषित वातादि दोषों से कुपित जाठराग्नि और भी कुपित हो जाती है। क्योंकि इसके पूर्व ग्रीष्म (ज्येष्ठ व आषाढ़) में आदान काल होने से जाठराग्नि दूषित रहती है। इस काल में सूर्य अपनी तीव्र किरणों द्वारा संसार के स्नेहांश (जलीयांश) का शोषण कर लेता है। वर्षा होने के कारण ग्रीष्म ऋतु द्वारा तप्त पृथ्वी से भाप निकलती है। इस जल का विपाक अम्ल होने के कारण जब जाठराग्नि का बल अत्यन्त क्षीण हो जाता है, तब वातादि दोष कुपित हो जाते हैं। अतः वर्षाऋतु में त्रिदोष (वात, पित्त और कफ) नाशक वस्तुओं का सेवन करना चाहिये। आचार्य वाग्भट्ट ने त्रिदोषनाशक के साथ-साथ अग्नि दीपक द्रव्यों का भी प्रयोग करने को कहा है। इस ऋतु में प्रधान रूप से वात कुपित होता है और बाद में पित्त और कफ भी कुपित होते हैं।

दमा के कारण

तमक श्वास मुख्य रूप से कफ प्रधान रोग है। कफ के साथ ही इसमें वायु का भी अनुबन्ध होता है, अतः धुएं या धूल के श्वास मार्ग में प्रविष्ट होने से, शीत स्थान या शीतल द्रव्यों का अधिक सेवन करने से, अधिक व्यायाम, मैथुन, परिश्रम, रूक्ष अन्न के सेवन से, आम दोष के बढ़ने से, लंघन, वमन विरेचन के अतियोग, रूक्षता और आहार में चावल का आटा, तिल का तेल, विदाही या विष्टम्भी भोजन से, सेम, ईंख, गुरु आहार, जलज या आनूप मांस, दही, कच्चा दूध, अभिष्यन्दी, (कफ कारक) आहार-विहार के सेवन से कफ कुपित हो जाता है। बढ़ी हुई वायु प्राणवाही स्रोत (श्वास प्रणाली, नलिकाएं और फुफ्फुस) में प्रवेश कर श्वास कार्य में बाधा डालती है इससे आक्सीजन की कमी से प्रत्येक धात्वग्नि दूषित हो जाती हैं और धातु पोषण ठीक से नहीं हो पाता है, इससे कुपित वायु का सार्वदैहिक प्रभाव होकर श्वास के अतिरिक्त बैचेनी, शूल, भ्रम, मोह आदि विकार उत्पन्न होते हैं।

लक्षण एवं संप्राप्ति

श्वास-प्रश्वास का पूरा सम्बन्ध फुफ्फुस से ही है अतः पहले कफ विकृत होता है, और अवरोध के कारण वात कुपित होकर श्वास रोग उत्पन्न करते हैं।

जब श्वासवाही स्रोतों में अवरोध उत्पन्न हो जाता है तब कुपित वायु प्राणवह स्रोतों में प्रतिलोम (विपरीत गति से) चलने लगती है। इससे गर्दन-सिर में जकड़ाहट होकर कफ उभरकर पीनस (प्रतिश्याय) रोग उत्पन्न होता है। कफ से रूकी वायु गले में घरघराहट उत्पन्न करती है और प्राणों को पीड़ा पहुंचाने वाले श्वास के वेगों को बढ़ाती हैं। जब श्वास का वेग अत्यन्त बढ़ जाता है तो मनुष्य का शरीर टेढ़ा हो जाता है। उसे बार-बार खांसी आती है यदि कास का वेग बढ़ जाता है तो रोगी को बेहोशी होने लगती है। श्वास बढ़ जाने पर जब तक कास की क्षीणता नहीं होती तब तक रोगी को अधिक कष्ट होता है। यदि संयोगवश कफ अधिक निकल जाता है तो एक मुहूर्त के लिये उसे सुख की अनुभूति होती है। गले में सरसराहट तथा वार्तालाप करने में कठिनाई का अनुभव होता है। श्वास से पीड़ित व्यक्ति को शयन की चेष्टा करने पर भी निद्रा बिल्कुल नहीं आती। यदि निद्रा आ भी जाती है तो दोनों पार्श्वों में कुपित वायु वेदना उत्पन्न करती है और रोगी को बैठने पर ही कुछ आराम मिलता है। गरम वस्तु उसके लिये हितकारी होती है। उसका नेत्र सर्वदा ऊपर चढ़ा हुआ प्रतीत होता है। ललाट पर पसीना होता है, वह व्यक्ति अत्यन्त दुखी रहता है उसका मुख सूखा हुआ होता है। बार-बार श्वास का वेग बढ़ता है और रूक जाता है, और बादल, बरसात, शीतल वातावरण, पूर्वी वायु तथा कफवर्द्धक आहार-विहारों से श्वास की वृद्धि हो जाती है। इन लक्षणों से युक्त तमक श्वास याप्य अर्थात चिकित्सा से शमन योग्य होता है। यदि यह तमक श्वास नया अर्थात - एक वर्ष से कम दिनों का हो तो साध्य होता है।

रोकने के उपाय

तमक श्वास से बचने के लिये वर्षाऋतु में उदमन्थ (जल में घुला सत्तू) दिन में शयन, ओस गिरते समय उसमें बैठना या घूमना, नदी के जल का सेवन, व्यायाम, मैथुन और धूप में बैठना त्याग देना चाहिये। तभी तमक श्वास से बचा जा सकता है।

शेष पृष्ठ ८ पर

आधुनिक मतानुसार

यकृत और उसके रोग

यकृत शरीर का एक प्रमुख अंग है जो विषैले द्रव्यों के निर्विषीकरण के साथ शरीर के आवश्यक स्रावी और उत्सर्गी कार्य भी करता है।

नव निर्माण : यकृत विभिन्न रक्तरस प्रोटीन का निर्माण करता है। इनमें अल्ब्युमिन, फाइब्रिनोजन, ट्रिप्सिन, प्रोथ्राम्बिन एवं हेपैटोग्लोबिन प्रमुख हैं। यकृत प्रतिदिन १०–१२ ग्राम अल्ब्युमिन निर्मित करता है जिसका जीवनकाल तीन सप्ताह का है। इस कारण तीव्र यकृत व्याधियों में रक्तरस में अल्ब्युमिन की मात्रा सामान्य रहने पर भी जीर्ण व्याधियों – यकृदाल्युदर में रक्तरस में अल्ब्युमिन की मात्रा कम रहती है। प्रोथ्राम्बिन का जीवनकाल अल्प होने से तीव्र एवं जीर्ण दोनो प्रकार के यकृत रोगों में उसकी मात्रा कम हो जाती है। यकृत विटामिन 'के' एवं अन्य रक्तस्तम्भ कारक द्रव्यों को भी निर्मित करता है। यकृत कोलेस्ट्रॉल भी निर्मित करता है जो अनेक हार्मोन एवं पित्त लवणों का पूर्ववर्ती है और यकृतपित्त का प्रमुख घटक है। यकृतपित्त में यह स्वतन्त्र कोलेस्ट्रॉल के रूप में रहता है। कोलेस्ट्रॉल एवं उसके एस्टर की मात्रा अवरोधी कामला, पैत्तिक यकृदाल्युदर तथा पित्तवाहिनी के संकुचन में बढ़ जाती है।

उत्सर्जन : यकृत की पित्तरंजक बिलीरुबिन के उत्सर्जन में मुख्य भूमिका है। बिलीरुबिन मृत एवं मृतोन्मुख रक्तकणों के विघटन से बनता है। प्रतिदिन ३५ ग्राम हीमोग्लोबिन से लगभग ३०० मि.ग्रा. बिलीरुबिन बनता है। अन्त में बिलीरुबिन जल में विलेय बिलीरुबिन ग्लुकुरोनाइड में परिवर्तित होकर पित्त में उत्सर्जित होता है। कभी–कभी यह रंजक पित्त पथरी के निर्माण में केन्द्रक का कार्य भी करता है।

शोणांशी कामला में बिलीरुबिन अत्यधिक निर्मित होता है। कामला होने पर भी वयस्कों में इससे विशेष विकृति नहीं होती परन्तु नवजात शिशु में यह घातक हो सकती है। डुबिनजोन्सन सिन्ड्रोम तथा रोटर सिन्ड्रोम बिलीरुबिन के असामान्य उत्सर्जन के जन्मजात शिशुकामला के उदाहरण हैं।

अवरोधी कामला एवं यकृत शोथ में बंधु, मिट्टी के रंग का मल, अत्यन्त पीत मूत्र, तथा कुछ अन्य दैहिक लक्षण – भूख न लगना, जी मिचलाना एवं वमन के साथ रक्त में बिलीरुबिन की मात्रा बढ़ जाती है। तीव्रावस्था में मानसिक विपर्यय एवं व्यवहार में असामान्यता भी देखी जाती है।

औषध द्रव्यों का निर्विषीकरण : यकृत के इन्जाइम किसी द्रव्य को अधिक कार्यकारी अथवा निष्क्रिय यौगिकों में परिवर्तित कर सकते हैं। यकृत के इन्जाइम उसकी स्निग्ध अन्तस्थल जालक में विद्यमान रहते हैं। मारफिन तथा फिनोबारबिटोन निष्क्रिय, निर्विष यौगिकों में बदल दिये जाते हैं। अनेक औषधि द्रव्य यकृत के सूक्ष्म इन्जाइम संस्थान को तीव्र करते हैं अथवा अवरुद्ध करते हैं जिससे द्रव्यों के प्लाज्मा स्तर में परिवर्तन हो जाए और वे निष्क्रिय एवं निर्विष रूप हो जाएँ।

यकृत व्याधियों का चिकित्सीय स्वरूप

यद्यपि यकृत व्याधियों के लक्षण एवं चिह्न बहुत हैं परन्तु उन्हें उनमें उपलब्ध विकृति के आधार पर निम्न वर्गों में रख सकते हैं –

अ. तीव्र यकृत शोथ : यकृत में शोथ विषाणु, विभिन्न द्रव्य अथवा विष द्वारा होता है। विषाणु जन्य यकृत शोथ प्रमुख व्याधि है जो ए. बी. सी. डी. तथा ई. विषाणु द्वारा उत्पन्न होती है। विषाणु जन्य यकृत शोथ में क्षुधानाश, ज्वर, अंगमर्द के साथ मूत्र का रंग पीला, मल का रंग हलका पीला तथा नेत्र, त्वचा आदि में पीलिया पाया जाता है। पीलिया का काल एक से चार सप्ताह रहता है।

ब. जीर्ण यकृत कोष व्याधि या यकृदाल्युदर व्याधि : इस व्याधि का प्रारम्भ धीरे–धीरे होता है और विभिन्न लक्षण व्याधि के कार्यकाल में उत्पन्न होते रहते हैं। क्षुधानाश, बीमारी होने का अनुभव, दौर्बल्य, मैथुनाशक्तता, जलोदर तथा शोथ लक्षण धीरे–धीरे प्रकट होते हैं। पीलिया हो सकता है परन्तु शरीर में यकृत

शोथ के बराबर पीलिया नहीं होता। मानसिक लक्षण प्रमुखता से पाये जाते हैं और लगभग एक तिहाई रोगियों में रक्त वमन और मल में रक्त आना भी पाया जाता है।

स. अवरोधी कामला : हमारे देश में अधिकांशतः यह व्याधि अग्न्याशय और याकृत पित्त वाहिनी के कैंसर अथवा पित्ताशय की पथरी के कारण होती है। इसमें बढ़ता हुआ कामला, दौर्बल्य, धातुक्षय अथवा पैत्तिक पथरी शूल का बारंबार होना लक्षण होते हैं। कंडू एवं मिट्टी के रंग के मल के साथ इसमें यकृत बढ़ा हुआ तथा कठोर होता है। स्पर्शगम्य पित्ताशय की वृद्धि अग्न्याशय के कैंसर में पायी जाती है।

द. यकृत कोषीय कार्सीनोमा : प्राथमिक यकृत कैंसर व्याधि कम पायी जाती है। यकृत के कैंसर अधिकांशतः अन्य स्थान के कैंसर के परिणामी होते हैं। कैंसर यकृत के दक्षिण खण्ड के ऊर्ध्व प्रान्त में अर्वुद के रूप में प्रारम्भ होता है। कामला कभी रहता है कभी नहीं रहता। विषाणु यकृत शोथ एवं यकृद्दाल्युदर यकृत कैंसर की उत्पत्ति में पूर्ववर्ती सहायक होते हैं।

यकृत व्याधियों के नए उपचार

कर्टिकोस्टीराइड : यकृत व्याधि में कर्टिकोस्टीराइड ने रोगियों को नयी आशा का संचार दिया है। तीव्र एवं जीर्ण यकृत शोथ में प्रेडनीसीलोन चिकित्सा से ८० प्रतिशत रोगियों को लाभ पहुँचाया है।

विषाणु विरोधी द्रव्य : इन्टरफेरान्स व्याधित यकृत कोषों के विनाश में वृद्धि करते हैं। यह द्रव्य इन्जेक्शन द्वारा मांसपेशी में सप्ताह में तीन बार तीन माह तक दिया जाता है। इस द्रव्य के विपरीत परिणाम भी हैं और इससे ८ से १२ सप्ताह चिकित्सा करने पर रक्त में विषाणु लुप्त हो जाते हैं। यकृत की सूक्ष्म रचना भी तीव्र यकृत शोथ से निष्क्रिय जीर्णशोथ में परिवर्तित हो जाती है।

इन्डोस्कोपिक वेरीसील स्केलोथिरेपी : इस विधि से अन्न नलिका की शिराओं से रक्तस्राव को बन्द किया जाता है। इस चिकित्सा से अब शन्ट शल्य क्रिया की अपेक्षा यकृतीय उच्चदाब को अधिक सरलता से नियमित किया जाता है।

टीका : विषाणु जन्य यकृत शोथ में इसका उपयोग रोग के प्रतिरोध के लिये किया जाता है। इसके लिये एच.बी.एस.ए.जी. विषाणु को निष्क्रिय कर मर्क शार्प एंड डोम द्वारा निर्मित वेक्सीन (टीके) का प्रयोग करते हैं। वेक्सीन की तीन मात्राएँ १ तथा ६ माह में लगाते हैं। बच्चों में वेक्सीन की मात्रा अल्प रहती है। इससे यकृत शोथ बी. के प्रतिरोध में अल्पकाल के लिये ९५ प्रतिशत सहायता मिलती है परन्तु इसका उच्च मूल्य और प्राप्ति की कठिनाई ने इसके उपयोग को संकुचित कर दिया है।

यकृत प्रत्यारोपण : संसार के देशों में शल्य क्रिया कला की उच्चतम विधियों के आविष्कार से यकृत दाता के मिलने की सुविधा से तथा उत्तम इम्यूनोसप्रेसिव चिकित्सा की सुविधा से यकृत प्रत्यारोपण ऐसे रोगियों को वरदान साबित होता है जिनकी यकृत व्याधि अन्तिम अवस्था में पहुँच गई है। संसार के कुछ ही देशों में यकृत प्रत्यारोपण विकसित हो पाया है परन्तु हमारे देश में यह अभी भी स्वप्नतुल्य ही है।

(डॉ. ए.एस.पुरी एवं डॉ. एस.आर. नायक, लखनऊ, के लेख पर आधारित)

पृष्ठ ६ का शेष

तमक श्वास...

तमक श्वास की चिकित्सा

तमक रोग से आक्रान्त हो जाने पर चिकित्सा के लिये सर्वप्रथम सेंधा नमक और तिल के तेल को मिलाकर वक्ष प्रदेश पर मर्दन करते हैं। इसके बाद स्निग्ध द्रव्यों से नाड़ी, प्रस्तर या संकर स्वेद कराना चाहिए। इस प्रकार स्नेहन, स्वेदन करने से स्रोतो में गाँठ के समान बना हुआ कफ द्रवीभूत हो जाता है जिससे वायु का अनुलोम प्रवाह हो जता है। भलीभाँति स्नेहन, स्वेदन के बाद रोगी को शीघ्र ही स्निग्ध द्रव्यों के साथ भात खिलाना चाहिए। मछली या सूअर का मांसरस अथवा दही प्रधान भोजन देना चाहिए। इन क्रियाओं के द्वारा जब कफ की वृद्धि हो जाये तब पिप्पली चूर्ण और सेंधा नमक, मधु के साथ वमनार्थ देना चाहिये साथ ही यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि वामक द्रव्य वातकर न हों। वमन से दूषित कफ निकल जाने पर रोगी को आराम हो जाता है, स्रोतों की शुद्धि हो जाती है और सांस भली प्रकार चलने लगती है। साथ ही श्वास रोग के कारणों को भी त्याग देना चाहिए।

श्वास रोगी को पुराना शालि चावल, साठी चावल, गेहूँ और जौ भोजन में लेना चाहिए। चक्रपाणि के अनुसार खाने-पीने की सभी वस्तुओं में थोड़ा मधु मिला देना चाहिये, क्योंकि यह वातकारक होने पर भी वर्षाऋतु में उत्पन्न चिपचिपाहट का शमन करती है।

यकृत, पित्त और अग्नि

– डा. भा. वि. साठ्ये, मुंबई

यकृत एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है जो मल–मूत्र को शरीर से बाहर निकालने में प्रमुख भूमिका अदा करता है। बाहर से अन्दर पहुंचने वाले आहार का पाचन मुख्य रूप से जठरांत्र पथ के केंद्रीय भाग में संपन्न होता है। यह क्रिया पित्तधरा शिराओं में पित्त द्वारा सुसंपादित होती है। त्वचा और श्लेष्मल कलाओं को उपयुक्त रंग प्रदान करना, आहार के लाभदायक रस को आत्मसात् करना, पाचक–अग्नि को दीप्त रखना और स्वास्थ्य का परिरक्षण– ये चार इसके मुख्य कार्य हैं। ये कार्य यकृत और संबद्ध पित्त केन्द्रों में पित्त की समुचित छनाई और परिसंचरण पर निर्भर करते हैं।

यकृत की समुचित क्रिया से शरीर का वर्ण–सौष्ठव बना रहता है, खाना खाने की इच्छा होती है और उसे हजम करने की शक्ति प्राप्त होती है और स्वास्थ्य का परिरक्षण होता है। वे सभी अंग जो पाचन और स्वांगीकरण के लिए उत्तरदायी हैं यकृत् के चारों ओर स्थित हैं। आहार नली के विविध अवयव यकृत् से जुड़े हैं। 'मल विभजन' शब्द के प्रयोग से प्राचीन आचार्यों ने पाचन के बाद समुचित आत्मसात्करण की ओर इंगित किया है। पूर्ण आत्मसात्करण अग्नि और वायु के कर्मों से होता है, ऐसा माना गया है।

शारीर संरचनाओं को ठीक परिभाषित करने से बचने के लिये और क्रिया पर जोर देने के लिए 'पक्वामाशयमध्य' पद का प्रयोग निरपवाद रूप से किया गया है। यकृत के चतुर्दिक स्थित कोष्ठ और पक्वामाशयमध्य वे केंद्र हैं जो पाचन और आत्मसात्करण की पूरी क्रिया के लिए उत्तरदायी हैं। क्रिया का वर्णन दोष, रस, मूत्र, पुरीषाणि आदि मोटे–मोटे संवर्गों के नामोल्लेख से किया गया है। ऊतकों के अवयवों का वर्णन नहीं किया गया है।

इस परिप्रेक्ष्य में रक्तवह शिरा की सामान्य क्रिया के वर्णन पर ध्यान देना चाहिए। 175 शिराओं का जाल धातुओं की पूर्ति, वर्ण–सौष्ठव के रखरखाव और निश्चित स्पर्शज्ञान के लिए उत्तरदायी है। अतः संभरणीय ऊतक–अवयवों के उत्पादन के लिए यकृत के विशिष्ट तंत्र की विशिष्ट क्रिया उत्तरदायी है।

चरक और सुश्रुत दोनों इस बात पर जोर देते हैं कि कोशिकाओं के निर्माण की पूरी प्रक्रिया रक्तवहा की समुचित क्रिया पर निर्भर है। यह बात यकृत और प्लीहा की ओर इंगित करती है।

अनेक दृष्टियों से ऊतक रक्त और निराकरणीय पित्त का अंतर्संबंध महत्वपूर्ण है। दोनों पदार्थ त्वचा और अनेक श्लेष्मल कलाओं के रंग के लिए उत्तरदायी है।

प्लीहा और यकृत के विकार से रूप–रंग में परिवर्तन होता है। रक्तवह स्रोतस के विकारों के अन्तर्गत शरीर का नीला पड़ जाना, विविध रक्तस्राव, आँखों की लाली, कामला, विविध श्लेष्म–चर्मसन्धियों के विकार, त्वचीय उभार, ददोरे आदि सभी विकार आ जाते हैं।

जीवनीय – पुराने अंक बिना डाक शुल्क पर

पाठकों के लगातार अनुरोध के कारण हमने जीवनीय के पुराने अंक उपलब्ध कराने हेतु पत्रिका पर डाक शुल्क की छूट देने का निर्णय लिया है। इस प्रकार पत्रिका के पुराने अंकों में दी गई जानकारी का लाभ पाठक उठा सकेंगे। जीवनीय का प्रत्येक अंक परिवार में रखने योग्य है अतः पाठक इस छूट का तुरन्त लाभ उठाएं। पिछले एक वर्ष के छः अंकों की कीमत मात्र ३० रु ही पड़ेगी। रजिस्टर्ड डाक से मंगाने के लिए ६ रू अधिक भेजे। बाहर के चेकों पर १० रु. बैंक शुल्क भी देना होगा। चेक या ड्राफ्ट **एल.एस. पी.एस.एस., जीवनीय** *के नाम से ही भेजें।*

वितरण प्रबन्धक

कामला के अनुभूत उपचार

– वैद्य सी. जी. जोशी, पुणे

कामला पित्तदोष का एक विशिष्ट विकार है, जो रक्तवह–स्रोतोदुष्टि, अर्थात् रक्त वाहिकाओं, रक्त तथा उनके मूलस्थान यकृत और प्लीहा की अप–सामान्यतासे उत्पन्न होता है। शरीर के विभिन्न भागों जैसे त्वचा, चेहरा, मूत्र एवं नेत्र श्लेष्मला के हल्दी जैसे पीले होने से इसकी पहचान की जाती है।

चरक ने दो प्रकार की कामला का उल्लेख किया है, शाखाश्रित एवं कोष्ठाश्रित। सुश्रुत ने पित्त दोष वाहिकाओं के अवरोध को कामला का कारण माना है। पित्त अपसामान्य रूप से परिसरी तंत्र की ओर निर्दिष्ट होकर वहाँ एकत्र होने लगता है और सौमान्य रूप से आँतों में पाचन के लिये प्रविष्ट नहीं होता जिसके परिणाम–स्वरूप रोगी को सफेद या मिट्टी के रंग का पाखाना और लाल–पीला पेशाब होता है। यह शाखाश्रित कामला है।

कोष्ठाश्रित कामला में आंतों में पित्त की अपवृद्धि होती है, जिससे रक्त दूषित हो जाता है और कामला उत्पन्न होती है। कोष्ठाश्रित कामला में पाखाने का रंग भी पीला होता है।

चूंकि कफ के कारण पित्त वाहिका अवरूद्ध हो जाती है ऐसी स्थिति में कफ का अवरोध हटाने और अपवृद्ध पित्त को घटाने के लिए विरेचन अनिवार्य है। दोष संचयानुसार विरेचन का क्रम निम्नवत् है :–

वातवृद्धि के लक्षणों और पाखाने के कड़े होने अथवा कब्ज में हम अरेंडी के तेल का प्रयोग करते हैं।

जब यह कफ की वृद्धि से होता है और रोगी को कम भूख लगने, शरीर में भारीपन और अरुचि की शिकायत होती है तब हम आवश्यकतानुसार नाराच या महामृत्युंजय देते हैं। इस विरेचन औषध की मात्रा इस प्रकार समायोजित करनी चाहिए कि रोगी को नित्य दो या तीन पतले दस्त हों।

इस युक्ति से अत्यधिक बिगड़े हुए कफ और पित्त को शरीर से बाहर कर दिया जाता है।

दोनों प्रकार की कामलाओं में वासादि क्वाथ अत्यधिक सफल अनुभूत है। इस क्वाथ में कटुकी, नीम और अडूसा होने के कारण यह यकृत् और पित्त वाहिका के अवरोध को दूर करती है और साथ ही कामला में उत्पन्न पित्त के अतिरेक का शमन करती है। जब इस विरेचन के प्रयोग से ४ – ५ दिनों में पाखाने का रंग पुनः पूर्ववत् पीला हो जाता है तब त्रिविध शमनयोगों का प्रयोग करते हैं :

पित्त के पर्याप्त निष्कासन के पश्चात् एक मामूली दवा ५०० मि.ग्रा. हल्दी और ५०० मि.ग्रा. अदरक चूर्ण दूध के साथ कारगर होती है। इससे भूख बढ़ जाती है।

जलन, प्यास और कमजोरी में सुबह शाम अनार के रस अथवा कटु इंद्रायण और मिश्री मिलाकर ५०० मि.ग्रा. चन्द्रपुटी प्रवाल देते हैं।

वमन और अरूचि जैसे कफ–वृद्धि के लक्षणों वाली कामला में एक ग्राम जीरा चूर्ण और दूध के साथ कटु इन्द्रायणं की ६ ग्राम पत्तियां भी लाभकर हैं।

अरक्तता, विवर्णता और कमजोरी में २०० मि.ग्रा. नवायस चूर्ण सुबह शाम शहद के साथ देना चाहिए।

हमने कोंकण क्षेत्र में कामला के कुछ विचित्र उपचार भी देखे हैं। इनमें से एक है अग्निकर्म, जो कलाई के जोड़ पर अथवा यकृत् के बढ़ जाने पर उसके स्थान पर बांस की सलाई अथवा गोबर के कंडे को जलाकर किया जाता है। इस युक्ति से रक्त केशिकाओं में झटके उत्पन्न होते हैं जिससे अवरोध हट जाता है।

कोष्ठाश्रित कामला में अतिरिक्त पित्त को निकाल बाहर करने के लिए मृदु विरेचन आवश्यक होता है, जिसके लिए ६ मि.ली. हरीतकी क्वाथ उत्तम है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है इस प्रकार की कामला का इलाज वासादि क्वाथ है। यह मृदु विरेचन के रूप में कार्य करके शरीर के सभी अंगों से पित्त को निकाल बाहर करता है।

अति अम्लता, आध्मान और 'आम' की स्थिति में नींबू के रस और शक्कर के साथ सुबह–शाम २५० से ५०० मि.ग्रा. प्रवाल पंचामृत देते हैं।

हरीतकी ६ भाग, हल्दी पिसी ३ भाग और १

भाग लौहभस्म को भलीभांति मिलाकर सुबह-शाम दो-दो ग्राम दूध के साथ देना चाहिए।

कमजोरी और अरक्तता में, बाजार में बिकनेवाली प्रसिद्ध सिद्ध औषधि 'योगराज' दी जाती है। इसे सुबह-शाम २५० मि.ग्रा. की मात्रा में शहद या नींबू और शक्कर के साथ देना चाहिए।

अनेक वैद्य आरोग्यवर्धिनी का प्रयोग कराते हैं जिसमें रस, गंधक, लौह, अभ्रक, ताम्रभस्म, शिलाजीत, त्रिफला और इन सबकी मात्राओं के योग की आधी कटुकी होती है। यह औषधि यकृत् और रक्त वाहिकाओं की शुद्धि करती है और पित्तशमन तथा सर्वांगशक्ति की वृद्धि में सहायक होती है। अनेक आधुनिक चिकित्सकों ने भी आरोग्यवर्धिनी की उपयुक्तता स्वीकार की है।

आहार-विहार : भात और उबला या सादा दूध, बिना मिर्च मसाले की मूंग की दाल, पेठा, ककड़ी, भिंडी आदि। ठंडा पानी, गरिष्ठ भक्ष्य, दही, चना और तली हुई चीजों से सख्त परहेज रखना चाहिए।

यथासंभव अधिक से अधिक बिस्तर पर लेटे रहना चाहिए। तेज धूप, देर रात तक जागना और क्रोध से हर हाल में बचना चाहिए।

पीलिया : रोगियों के लिए सुझाव

• पीलिया रोग के लक्षणों (जैसे - भूख न लगना, जी मचलाना, उल्टी होना, बुखार आना) के शरीर में प्रकट होते ही योग्य चिकित्सक से संपर्क कर तथा खून की जाँच कराकर, रोग के बारे में निश्चित जानकारी कर लेनी चाहिए।

• चूंकि पीलिया रोग स्वच्छ पानी न पीने से होता है अतः पानी को उबालकर ठंडा करके रख लें और इसी पानी को पिएं। पानी को उबाल लेने से पीलिया रोग के विषाणु मर जाते हैं।

• बाजार से जो फल व सब्जी लाएं, उनको अच्छी तरह से साफकर व धोकर ही सेवन करें। बाजार में मिलने वाली बर्फ व खुले तथा कटे खाद्य-पदार्थों को कदापि न लें।

• पीलिया रोग अधिकतर गर्मी व वर्षा के मौसम में ही देखने को मिलता है अतः इन दोनों मौसम के दौरान खाने-पीने में संयम रखें, पीलिया रोग में यकृत में सूजन आने के कारण वह अपने कार्य (भोजन पचाना व विषैले पदार्थ के प्रभाव को नष्ट करना) अच्छी तरह नहीं कर पाता अतः हल्का आहार ही खाएं, तेल-घी व इनके बने पदार्थ कदापि न लें। शराब को बिल्कुल न छुएं।

• यदि पीलिया रोगी को पहले से टी.बी. या कोई अन्य रोग भी है तो योग्य चिकित्सक की देखरेख में ही एलौपैथिक दवाएं लें।

• खाने में खिचड़ी, दलिया, पतली दाल व रोटी लें। फलों में मुसम्बी का रस, नींबू का रस व सेब ले सकते हैं। गन्ने का रस भी लाभकर होता है।

• पीलिया के रोगी को नींबू के रस का बना शर्बत दिन में दो-तीन बार लेना चाहिए क्योंकि नींबू, बढ़े हुए पित्त को कम करता है और पेट की तकलीफ जैसे अपच आदि को भी ठीक करता है। रोगी को कमजोरी रहती है अतः ग्लूकोज को पानी में घोलकर भी ले सकते हैं।

• रोगी को बिस्तर पर तब तक पूर्णतः आराम करना चाहिए जब तक वह रोग मुक्त न हो जाए।

• सब्जी में परवल, पालक, लौकी, कच्चा पपीता, तुरई लाभकर है। लेकिन मिर्च-मसाला व तैल कम ही प्रयोग करें।

• हल्दी का प्रयोग दाल व सब्जी में डालकर कर सकते हैं। हल्दी के बारे में लोगों को यह सोचना गलत है कि हल्दी का रंग पीला होता है अतः इसके लेने से पीलिया रोग बढ़ जाएगा, बल्कि हल्दी पित्तशामक होने के कारण लाभदायक है।

• यदि रोगी के व्यवहार में परिवर्तन आये जैसे-अनाप-शनाप बकना, तुरंत योग्य चिकित्सक से सम्पर्क करें।

कामला चिकित्सा

कुछ अनुभव

– वैद्य के. राघवन् तिरुमलपाद, चलकुडि, केरल

कामला का उपचार करना उसके निदान, संप्राप्ति आदि की व्याख्या करने से कहीं सरल है। कामला दो प्रकार की होती है, स्वतंत्र और परतंत्र। परतंत्र कामला उस कामला को कहते हैं जो किसी अन्य बीमारी के फलस्वरूप होती है। परतंत्र कामला के उपचार के लिए मूल रोग की चिकित्सा करनी चाहिए पर ऐसा भी देखा गया है कि कामला की चिकित्सा एवं आहार विहार के संयम से मूल रोग भी अच्छा हो जाता है। तामलकी, भृंगराज, एरंड के पत्ते जैसी एकौषधियों से कामला के प्रकट लक्षण जैसे आंखों और पेशाब का पीलापन आदि दूर होते हैं। एकौषधि चिकित्सा में कमी यही है कि इसमें रोगावस्था का समुचित मूल्यांकन नहीं हो पाता, किस दोष की विषमता है या किस धातु के वैषम्य से रोग उत्पन्न हुआ है, यह ज्ञात नहीं होता। किंतु आहार संबंधी अनुशासन का कठोरतापूर्वक पालन करने से जैसे अम्ल, लवण एवं कटुरसों के परित्याग से निदान परिवर्जन (रोग के कारण से बचाव) हो जाता है क्योंकि ये रस ही पित्त को दूषित करते हैं। शेष रस मधुर, तिक्त एवं कषाय पित्त का शमन करते हैं। इन शेष रसों के आहार के साथ–साथ व्याधिविपरीत एकौषधि का सेवन रोग को अच्छा कर देता है। कामला में पित्तनाशक उपाय किये जाने चाहिए।

मैं कामला के रोगियों का समुचित उपचार क्वाथ से करता हूँ। पित्त के शोधन का उपाय है विरेचन। इसके लिये तिक्त क्वाथ (तिक्तक घृत की औषधियों से निर्मित कषाय) अथवा पटोलकटुरोहिण्यादि गण की औषधियों से निर्मित क्वाथ को प्रातः अविपत्तिकर चूर्ण के साथ और शाम को नवायस चूर्ण के साथ देते हैं। अम्ल, लवण और कटु रसों के आहार का पूर्ण परित्याग कराते हुए फल और दूध आदि का सेवन कराते हैं। चावल की दलिया को दूध और शक्कर के साथ देते हैं। टूटे हुए चावलों की दलिया अदरख और पोडियारि की चटनी के साथ दी जा सकती है। इस चटनी में थोड़ा–सा नारियल और नमक भी चल सकता है। उपचार की यह विधि कभी असफल नहीं हुई। क्वाथ में अतिरिक्त औषधि के रूप में तामलकी और मण्डूकपर्णी डाली जाती है। पीने के लिए जौ का पानी या गोखरू और अदरक के साथ उबाला पानी दिया जाता है।

बहुतों को याद होगा, कुछ वर्ष पूर्व दिल्ली में कामला महामारी की तरह फैली थी। इनमें से जो रोगी अस्पतालों में भरती हुए उनमें से अधिकांश दिवंगत हो गये। केरल की एक युवती जो एम.बी.बी.एस. करने के बाद दिल्ली के एक प्रख्यात अस्पताल में प्रशिक्षु डाक्टर के रूप में कार्य कर रही थी, इस रोग की शिकार हो गयी। तीन सप्ताह तक उसका इलाज चला लेकिन उसकी स्थिति बिगड़ती गयी। इससे उसके उच्चपदस्थ माता–पिता बहुत चिन्तित हो गये। ऐसी स्थिति में रोगी के चाचा ने मुझसे सलाह मांगी। मेरे लिए रोगी की प्रत्यक्ष परीक्षा किये बगैर औषधि–व्यवस्था करना कठिन था। लेकिन कुछ–न–कुछ करना आवश्यक था क्योंकि रोगी की स्थिति विषम थी। रोगी के लिए कोई परहेज नहीं बताया गया था मगर उसे भूख नही लगती थी और उल्टियां ऊपर से होती थी।

मैंने रोगी को केवल फल खिलाने की सलाह दी। औषधि के रूप में आर्यवैद्यशाला कोट्टकल अथवा आर्यवैद्यफार्मेसी कोयंबटूर, जिनकी शाखाएं दिल्ली में भी हैं, द्वारा निर्मित तिक्तकक्वाथ तथा दिन में तीन बार जौ और अदरक के साथ उबाला हुआ पानी यथाशक्ति अधिक से अधिक पिलाने की राय दी।

तीन दिनों में ही रोगी की स्थिति में सुधार प्रकट होने लगा। मूत्र में पित्त लवणों की कमी होने लगी। एक हफ्ते बाद वह अस्पताल से घर आ गयी। एक महीने तक उसने पथ्य और औषधि का नियमपूर्वक सेवन किया। इसके बाद धीरे–धीरे साधारण आहार लेना शुरू किया। अब वह पूर्णरूप से ठीक हो चुकी थी लेकिन हमने उसे तिक्तक क्वाथ कुछ दिनों तक लेते रहने का परामर्श दिया।

यकृत की संरचना और कार्य

वैद्य प्रमोद मालवीय एवं वैद्य पूर्ण चन्द्र जैन, लखनऊ

यकृत शरीर की सबसे बड़ी ग्रन्थि है जो उदर गुहा के ऊर्ध्व प्रदेश में हृदय के नीचे दक्षिणानुपार्श्विक प्रदेश में स्थित है। इसका वजन लगभग १.५ कि.ग्रा. होता है तथा लम्बाई २०–२५ से.मी., चौड़ाई १०–१३ से.मी. और ऊँचाई १५–१८ से.मी. होती है। इसका प्रमुख कार्य अन्न के पचन एवं धातुपाक से है और इसके कार्य न करने पर प्राणी अधिक समय तक जीवित नहीं रहता। वैज्ञानिकों ने यकृत के खराब हो जाने, उसमें कैंसर हो जाने पर इसके प्रत्यारोपण के प्रयत्न किये हैं परन्तु उन्हें विशेष सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है।

यकृत की रचना

यकृत उदर के ऊर्ध्व प्रदेश में स्थित स्निग्ध, ठोस एवं त्रिकोणाकार होता है जिसका वर्ण कत्थई नालफल के समान होता है। यह प्रमुख दो खण्डों में विभाजित है जो दक्षिण एवं वाम कहलाते हैं। ये खण्ड असंख्य खण्डिकाओं में विभक्त हैं और प्रत्येक खण्डिका अनेक यकृत कोषों से निर्मित है। ये यकृत कोष पित्त की उत्पत्ति करते हैं और यकृत के अन्य कार्य भी करते हैं।

यकृत में उत्पन्न पित्त आयुर्वेद में कथित वात पित्त कफ त्रिदोष मूलक पित्त नहीं है वरन रक्त धातु से उत्पन्न होने के कारण रक्त का मल पित्त है। मल होने के कारण इसका शरीर से नियमित उत्सर्जन भी आवश्यक है और इसके नियमित उत्सर्जन न होने से कामला व्याधि हो जाती है। उत्सर्जन के पूर्व इस मल पित्त के घटक द्रव्य शरीर के कुछ आवश्यक कार्य भी करते हैं इसी से आयुर्वेद ने मलों को भी शरीर धारक कहा है।

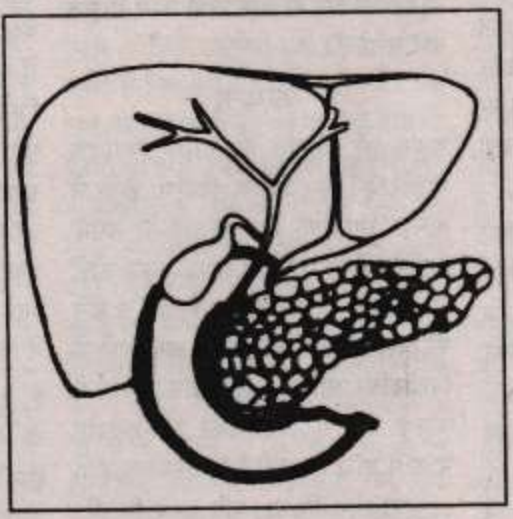

यकृत का पोषण : यकृत के भीतर एवं यकृत कोषों के अन्तराल में शिरा, धमनी, एवं पित्तवाहिनी की सूक्ष्म नलिकाओं का जाल कोषों को घेरे रहता है। यकृत में दो स्थानों से रक्त आता है। प्रथम – हृदय से निर्गत उदरीय महाधमनी की दो शाखाओं दक्षिण एवं वाम धमनी से आने वाले रक्त से यकृत का पोषण होता है। द्वितीय – उदर गुहा के अंगों से रक्त और आहार द्रव्यों के अन्नप्रणाली में पचन के उपरांत सारभाग को आचूषण से ग्रहण कर प्रतिहारिणी शिरा रक्त की आपूर्ति करती है। प्रतिहारिणी शिरा से पचन के उपरांत आये आहार द्रव्य यकृत की धातुपाक क्रिया द्वारा शरीर के तत्सम् द्रव्यों में परिवर्तित होते हैं जिससे शरीर शक्ति एवं पोषण के लिये उनका उपयोग करता है।

यकृत धमनी एवं प्रतिहारिणी शिरा यकृत में पहुँचकर सैकड़ों शाखा प्रशाखाओं में विभक्त होकर यकृत खण्डिकाओं के अन्तरालों में जाती है। इन शाखाओं से सूक्ष्म प्रशाखाएं निकलकर खण्डिकाओं के केन्द्र में मध्यवर्ती रक्तवाहिनी से सम्बद्ध हो जाती हैं।

यकृत की पित्तनलिकाएं : यकृत धमनी और प्रतिहारिणी सिरा के अतिरिक्त यकृत कोषों के अन्तरालों में एक और प्रकार की सूक्ष्म नलिकाएं होती हैं जिन्हें पित्तनलिकाएं कहते हैं। यकृत कोषों में निर्मित मलपित्त इन नलिकाओं में एकत्रित होकर तथा क्रमशः मिलकर दक्षिण वाम दो पित्त नलिकाएं और अन्त में एक पित्त नलिका बनती है। आगे चलकर इसमें पित्ताशय से आने वाली पित्तकोषनलिका मिलती है और यह सम्मिलित नलिका साधारणी ग्रहणी भाग में खुलती है। यकृत कोषों में निर्मित मलपित्त साधारणी पित्त प्रणाली से आन्त्र में आकर आहार के पचन, अवशोषण एवं मलनिःसरण में मदद करता है और पुरीष एवं मूत्र को स्वाभाविक रंग प्रदान करता है। आँतों में आहार का पचन न होते समय यकृत से उत्सर्जित मलपित्त

पित्ताशय में जमा हो जाता है। पित्ताशय एक छोटी सी अधोमुख थैली है जो यकृत के अधरपृष्ठ में स्थित रहती है।

यकृत के कार्य

यकृत शरीर की प्रमुख ग्रन्थि है जो स्रावी एवं उत्सर्जन दोनों प्रकार के कार्य करती है। यकृत का प्रमुख कार्य मलपित्त का निर्माण करना है। कामला व्याधि में यकृत के सभी कार्य कुछ न कुछ प्रतिशत विकृत हो जाते हैं परन्तु प्रमुख रूप से यकृत में मलपित्तरंजक बिलीरुबिन के अत्यधिक स्राव से अथवा उसके उत्सर्जन में बाधा होने से रक्तगत बिलीरुबिन में वृद्धि होकर कामला उत्पन्न होता है और अन्य अंगों पर विषयुक्त प्रभाव के कारण अनेक लक्षण उत्पन्न होते हैं।

मलपित्त की उत्पत्ति : यकृत में मलपित्त की उत्पत्ति यकृत कोषों से होती है। यह भूरा अथवा हरापन लिये भूरा द्रव है। शरीर के सभी स्थानों से आये रक्त को विच्छिन्नकर यकृत २४ घंटों में औसतन ८००–१००० मि.ली. मलपित्त निर्मित करता है। यह द्रव आहार न लेने की अवस्था में पित्तनलिका और पित्तकोष नलिका से गुजरकर पित्ताशय में संग्रहीत हो जाता है। लगभग ५० मि.ली. मलपित्त अतिसान्द्र रूप में पित्ताशय में संचित होता है जो १०० मि.ली. द्रव के बराबर होता है। आहार के लेने और उसके पचन के समय उत्तेजना प्राप्त कर पित्ताशय संकुचित होता है और साधारणी पित्त प्रणाली द्वारा मलपित्त को ग्रहणी में भेजता है जहाँ यह पित्त अन्न के पचन एवं अवशोषण में मदद करता है। इसी पित्त की विकृति से कामला होता है।

यकृत के अन्य कार्य: मलपित्त की उत्पत्ति के अतिरिक्त यकृत अन्य प्रमुख कार्य भी करता है। इन कार्यों में रक्तकणों का निर्माण एवं विघटन, रक्तोत्पादक सामग्री एवं रक्त स्कंदन सामग्री का निर्माण, रक्तोत्पादक एवं रक्तस्कंदक सामग्री का संग्रह, कोलेस्ट्रॉल का निर्माण, विभिन्न धात्वज अणुओं, विष, जीवाणु, औषधि द्रव्य एवं कोलेस्ट्रॉल का उत्सर्जन कराना (यह कार्य मलपित्त द्वारा होता है), विषैले द्रव्यों का निर्विषीकरण, अनेक द्रव्यों का ऑक्सीकरण, विघटन एवं युग्मीकरण आदि कार्य प्रमुख हैं। कामला व्याधि में न्यूनाधिक रूप से उक्त सभी कार्य विकृत होने लगते हैं।

कामला

यकृत की विकृति के कारण पित्तरंजक बिलीरुबिन के अधिक निर्माण होने से अथवा साधारणी पित्त प्रणाली से उसके उत्सर्जन अवरुद्ध होने से अथवा यकृत कोषों की विकृति से मलपित्त का निर्माण न होने पर बिलीरुबिन के उत्सर्जन में कमी आने से बिलीरुबिन शोषित होकर यकृत से रक्त में जाकर रक्त में बिलीरुबिन की प्रतिशत मात्रा में वृद्धि हो जाती है (स्वाभाविक मात्रा ०.५ से ०.८ मि.ग्रा. प्रति १०० मि.ली. रक्त)। रक्त के माध्यम से बिलीरुबिन ऊतकों में जाकर त्वचा, नेत्र, श्लेष्मल कला, मूत्र, पुरीष आदि का वर्ण पीला कर देता है और अनेक सार्वदैहिक लक्षण उत्पन्न करता है, इस व्याधि को कामला कहते हैं। आयुर्वेद में वर्णित कोष्ठगत कामला, शाखागत कामला, कुंभकामला, एवं हलीमक रोग कामला की विभिन्न अवस्थाएं हैं।

कामला के कारण

कामला प्रमुख रूप से मुख द्वारा दूषित आहार एवं पेय द्रव्यों के सेवन से होता है। ये द्रव्य जीवाणु, विषाणु, विभिन्न विष द्रव्य, अल्कोहल एवं अन्य मादक तथा घातक द्रव्य हो सकते हैं। ये सभी द्रव्य पित्तवर्द्धक हैं। इसी कारण आयुर्वेद में पित्तवर्द्धक द्रव्यों का अत्यधिक सेवन कामला का कारण कहा है।

कामला के विभिन्न प्रकार

कामला के रोगी दो वर्गों में आते हैं। प्रथम- जिनमें यकृत की प्राथमिक विकृति से कामला उत्पन्न होता है। इसमें कामला, कोष्ठगत कामला, यकृदाल्युदर, यकृतशोथ, यकृत कैंसर (प्राथमिक) यकृत में सूजन आदि व्याधि आती हैं। द्वितीय – जिनमें अन्य किसी व्याधि के परिणामस्वरूप यकृत में विकृति अथवा साधारणीपित्त प्रणाली में अवरोध के कारण कामला होता है। इसमें अवरोधी कामला, यकृत फिरंग, द्वितीयक कैंसर आदि रोग आते हैं। सामान्यतः कामला को तीन वर्गों में विभाजित करते हैं।

१. रक्त संलापी कामला : इसमें रक्तकणों के अत्यधिक विघटन से रक्त में बिलीरुबिन की मात्रा बढ़ जाती है। इसमें पीलिया के साथ रक्त की कमी, यकृतवृद्धि, अपचन एवं पीतमूत्र पुरीष रहता है। आयुर्वेद में इसे कामला की संज्ञा दी है।

२. यकृत कोषीय कामला : इसमें विषाणु अल्कोहल विषद्रव्य एवं अन्य शरीर को असात्म्य द्रव्यों के सेवन से यकृत कोष विकृत होने अपना कार्य नहीं कर पाते। इससे मलपित्त रंजके यकृत से शोषित होकर रक्त में उसकी मात्रा बढ़ा देते हैं। इस कारण यकृत के सभी कार्य विकृत हो जाते हैं। इसमें यकृतवृद्धि के साथ क्षुधानाश, वमन की प्रवृत्ति, अपचन, मंदज्वर, धातुपाक में

शेष पृष्ठ १६ पर

पित्त एवं उसके कार्य

वैद्य एस.ए. खान, लखनऊ

पिछले अंकों में पाठक पढ़ चुके हैं कि शरीर की सभी सामान्य और वैकारिक, भौतिक और रसायनिक, शारीरिक और मानसिक, चय और अपचयकारी क्रियाओं को कराने वाला त्रिदोष है। यहाँ तक कि ब्रह्माण्ड में उपरोक्त सारी क्रियाओं का कारक भी त्रिदोष ही है। इन सारी क्रियाओं के कारक वात, पित्त और कफ तीन हैं। अतः सारी क्रियाओं को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं। पिछले अंक में हम वात द्वारा कराई जाने वाली सामान्य और वैकारिक क्रियाओं का वर्णन कर चुके हैं। अब हम पित्त द्वारा सम्पन्न होने वाली क्रियाओं का वर्णन करेंगे।

वात के बाद महत्वपूर्ण दोष पित्त है। पित्त ही अग्नि है और अग्नि (ताप) ही जीवन है। जब शरीर में अग्नि व्यापार बन्द हो जाता है तब जीवन लीला समाप्त हो जाती है। जीवन बनाये रखने के लिये शरीर का ताप बनाए रखना आवश्यक होता है। प्रकृति में अग्नि का मुख्य स्रोत सूर्य है। सूर्य की किरणों से अग्नि (ताप) ग्रहण करके पेड़, पौधे व वनस्पतियाँ इस ताप को पित्त वर्धक रसों के रूप में अपने में एकत्र करती हैं। कटु रस = वायु + अग्नि, अम्ल रस =अग्नि + जल, लवण रस =अग्नि + पृथ्वी से मिलकर बनते हैं। ये तीनों रस पित्त (अग्नि वर्धक) हैं। वे पदार्थ भी पित्तवर्धक होते हैं जिनके विपाक कटु होते हैं।

जो भोजन हम करते हैं उसे शरीर में विभिन्न क्रियाओं से गुजरना पड़ता है। इन क्रियाओं का नाम पाक या पाचन है। पाचन की क्रिया पित्त द्वारा ही सम्पन्न होती है। भोजन के पाक के बाद दो प्रकार के पदार्थ बनते हैं। एक भाग, जो शुद्ध भाग होता है यह उत्तरोत्तर सात धातुओं का निर्माण करता है। हर धातु के पाचन (अगली धातु में परिवर्तन) के समय एक शुद्ध और दूसरा अशुद्ध भाग बनता है। इस धातुपाक में भी धात्वाग्नि (पित्त) की आवश्यकता होती है।

पाक के बाद जो अशुद्ध भाग बनता है वह शरीर के लिये उपयोगी नहीं होता है। उसे शरीर से निकलना आवश्यक होता है। इस भाग को मल कहते हैं। यह कार्य भी पित्त ही करता है। अतः शरीर की सभी धातुओं का शुद्धीकरण भी पित्त का सामान्य कार्य है। पित्त के बिना कहीं भी वस्तुओं की दशा-परिवर्तन सम्भव नहीं है। पित्त जहाँ भी है वहाँ गर्मी है, ताप है, चाहे जिगर हो, विद्रधि की गर्मी हो उदर में, अंगों में जलन हो, धूप की गर्मी हो किसी रसायन क्रिया या सड़ने गलने से उत्पन्न गर्मी हो या आणविक उपकरणों से निकली गर्मी हो। ऊपर लिखे कटु, अम्ल, लवण रसवाले या कटु विपाक वाले पदार्थों (औषधि, अन्न) का सेवन करते हैं तो हमारे शरीर में पित्त की क्रिया बढ़ जाती है। वात और कफ शान्त होता है यदि पित्त पहले से बढ़ा है या पित्तज प्रकृति वाला मनुष्य उपरोक्त का सेवन कर रहा है तो पित्त और बढ़ जाता है या प्रकुपित होकर पित्तज विकार उत्पन्न कर देता है।

पित्त हमारे शरीर की हर कोशिका में है परन्तु मुख्य रूप से आमाशय, ग्रहणी, पित्ताशय, यकृत, तिल्ली, हृदय (रक्त), त्वचा, नेत्र आदि में रहता है। भोजन का पचना, ठीक प्रकार से सभी धातुओं का निर्माण, भूख-प्यास लगना, रक्त का समुचित मात्रा में निर्माण होना भी पित्त का ही सामान्य कार्य है। यदि उपरोक्त अंगों के कार्य सामान्य रूप से चल रहे हैं तो यह समझा जा सकता है कि हमारे शरीर में पित्त का कार्य ठीक प्रकार से चल रहा है।

पित्त सत्व गुण प्रधान है। अतः बुद्धि, धैर्य, स्मृति, वीरता, तेज, ज्ञान आदि सात्विक गुण उत्पन्न करना भी पित्त का सामान्य कार्य है। पित्त का ह्रास होकर तमोगुण जब बढ़ जाता है तब आलस्य, अज्ञानता, मोह, भय, बुद्धि, नाश आदि तामसिक गुण बढ़ते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि त्रिदोष शारीरिक क्रियाओं के साथ-साथ शरीर की मानसिक क्रियाओं पर भी नियन्त्रण रखता है।

आजकल की आपाधापी, मोह, अहंकार, अशान्ति, भ्रष्टाचार, व्यभिचार, हिंसा, अमानविक कार्यों का मूल कारण यही है कि हमारा खान-पान, रहन-सहन, विचार (नास्तिकता), आचार-व्यवहार सभी कुछ बदल गया है। हमारे शरीर में त्रिदोष असन्तुलित अवस्था में रहने लगा है। सात्विक गुणों से हम दूर हो रहे हैं।

आयुर्वेद के अनुसार प्रज्ञापराध (अज्ञानता) भी रोग का कारण माना गया है। अतः पूर्ण स्वस्थ शरीर एवं मन के लिये हमें अध्यात्मिक पहलू को भी महत्व देना चाहिये।यदि हमारी दृष्टि सहज एवं सात्विक है तो समझना चाहिये कि हमारे शरीर में पित्त सामान्य अवस्था में हैं। रक्त अधिक प्रमाण में बनता है तब भी पित्त का कार्य सामान्य नहीं है या कम बनता है (रक्ताल्पता) तब भी पित्त का कार्य शरीर में सामान्य रूप से नहीं हो रहा है।

त्वचा का स्वाभाविक रंग भी पित्त के सामान्य कार्यों में से एक है। यदि त्वचा आभायुक्त है, कोमल है, चेहरे पर स्वाभाविक लाली है तो समझना चाहिये कि पित्त का कार्य सामान्य है।

मल, मूत्र, स्वेद का निस्सारण भी पित्त का कार्य है। यदि भोजन पचने के बाद शरीर में लघुता रहती है, भूख समय पर खुल कर लगती है (अति तीव्र नहीं), मल-मूत्र स्वाभाविक रूप से विसर्जित होते हैं तब भी पित्त का कार्य सामान्य है।

शरीर में ताप का नियन्त्रण भी पित्त ही करता है। यदि शरीर में ताप अधिक हो जाये तो पित्त बढ़ा हुआ या असामान्य समझना चाहिये। जब शरीर या किसी बीमारी के कारण कफ अत्यन्त बढ़ जाने से अर्थात् पित्त के अत्यन्त क्षीण हो जाने से शीत हो जाता है तब हम पित्त बढ़ाने या पित्त की क्रिया शरीर में तेज करने के लिये ही चाय, कॉफी, मदिरा आदि का सेवन करते हैं। अथवा आग या गरम बोतल से कृत्रिम रूप से शरीर में गर्मी पहुँचाते हैं। रक्त भी पित्त रूप है अतः रक्त देकर भी हम पित्त की क्षीणता को कम करते हैं।

शरीर में पित्त को सामान्य रखने के लिये सिर को ढककर रखें, शरीर को कपड़ों से ढका रखें। सीधी गर्म हवा से बचें। शारीरिक श्रम भी यथाशक्ति करते रहें। अपनी प्रकृति के अनुसार रहन-सहन, खान-पान का सेवन करें।

पृष्ठ १४ का शेष

यकृत् और उसके कार्य...

कमी, पीलिया, पुरीष एवं मूत्र का रंग पीला, शोथ, जलोदर आदि लक्षण हो सकते हैं। आयुर्वेद में इसे कोष्ठगत कामला तथा यकृद्दाल्युदर की संज्ञा दी है।

३. अवरोधी कामला : सामान्यतः यकृत कोषों द्वारा निर्मित मलपित्त पित्तनलिका एवं साधारणी पित्त प्रणाली द्वारा आन्त्र के प्रथम भाग ग्रहणी में उत्सर्जित होता है। उत्सर्जन के मार्ग में शोथ, पित्तपथरी एवं अन्य समीपस्थ अंगों के अर्बुद के कारण अवरोध उत्पन्न होने पित्तरंजक बिलीरुबिन यकृत में ही संचित होने लगता है और वहीं से कोशिकाओं द्वारा अवशोषित हो रक्त में बिलीरुबिन की मात्रा बढ़ाकर कामला उत्पन्न करता है। इसमें क्षुधानाश, वमन, अरोचक, दौर्बल्य, कंडू, नाड़ी की मंदगति, रक्तस्राव की प्रवृत्ति, मूत्र गहरे पीले रंग का और पुरीष तिल की पीठी के समान श्वेत वर्ण का होना लक्षण होते हैं। आयुर्वेद में इसे शाखागत कामला की संज्ञा दी है।

कामला रोग के जीर्ण होने पर रक्ताल्पता, पर्वभेद एवं शोक होने पर उसे कुंभकामला कहते हैं। रोग की और वृद्धि होने पर जब रोगी का वर्ण हरा, श्याम अथवा पीला हो जाए, बल एवं उत्साह नष्ट हो जाए, मंदाग्नि, मंदज्वर, मैथुनाशक्तता, अंगमर्द, श्वास, तृष्णा, तन्द्रा, मूर्च्छा एवं भ्रम हो उस अवस्था को हलीमक कहते हैं। पीलिया में विषाक्तता की यह अवस्था है और प्रायः असाध्य होती है।

हमारे प्रमुख वितरक

मै. पुष्पक सेल्स एजेन्सी
२५१, डबल स्टोरी, वेलकम कालोनी, सीलमपुर, जी. टी. रोड, दिल्ली

श्री आर. ए. दुबे एंड सन्स
१०७, बादशाही मंडी, इलाहाबाद

मै. अलका न्यूज एजेन्सी
रेलवे स्टेशन, कानपुर

मै. एस. के. न्यूज एजेन्सीस,
घंटाघर, कानपुर

मै. विद्या मंदिर,
सी-४७/१३७, रामपुरा, वाराणसी

बशीर बुक स्टाल
रोडवेज स्टेशन, हरदोई

श्री अशोक कुमार अरोड़ा
रेलवे बुक स्टाल, मुरादाबाद

पाकेट बुक सेंटर
रिलीफ रोड, अहमदाबाद

बड़ौदा बुक सेंटर
बड़ौदा

आर्य वैद्य फार्मेसी
३६६, त्रिची रोड, कोयम्बटूर

गोयल इन्टरप्राइजेज
माटुंगा, बम्बई

नेशनल बुक सेन्टर
महाजन मार्केट, सीताबर्डी, नागपुर

पक्षाघात : बचाव एवं उपचार

डा. गोविन्द प्रसाद उपाध्याय, नागपुर

पक्षाघात एक दीर्घकालीन तथा बहुविध कष्टदायी व्याधि है। आयुर्वेद शास्त्र इसे नानात्मज वात व्याधि मानता है। वर्षाऋतु में वात का स्वाभाविक प्रकोप होता है। फलतः वर्षाऋतु में पक्षाघात की प्रवृत्ति अधिकता से मिलती है। पक्षाघात शब्द से ही शरीर के दाहिने या बांये पक्ष (हिस्से) में आघात (निष्क्रियता) होना स्पष्ट होता है। आम बोलचाल की भाषा में इसे लकवा मारना तथा आधुनिक चिकित्साशास्त्र में हेमीप्लेजिया कहते हैं। इस रोग के कारण शरीर के आधे हिस्से की कर्मेन्द्रियां निष्क्रिय हो जाती हैं अतएव रोगी अपने बल पर न तो उठ बैठ सकता है, न चल सकता है और न सीधा खड़ा रह सकता है। ज्ञानेन्द्रियों के भी घातित हो जाने पर रोगी को संज्ञाओं का ज्ञान नहीं हो पाता। वह पूरी तरह पराधीन हो जाता है।

यदि पक्षाघात सार्दित है अर्थात् चेहरे की तंत्रिकाएं भी घातित हैं तो रोगी का मुंह टेढ़ा हो जाता है, एक आँख खुली या बन्द ही रहती है, खाने, पीने, बोलने में असमर्थता, हर समय आँख में आँसू, लार का गिरना, जीभ का वक्र होना जैसे कष्टप्रद और बीभत्स लक्षण मिलते हैं।

आयुर्वेद शास्त्र पक्षाघात को वात विकृति जन्य व्याधि मानता है जबकि आधुनिक चिकित्सा शास्त्र इसे तंत्रिकाओं के निष्क्रिय होने के कारण उत्पन्न मानता है। तत्वतः दोनों में कोई भेद नहीं हैं। हमारे मस्तिष्कसे निकलने वाली तंत्रिकाएं वात प्रवाह को सम्वाहित करती हैं किसी कारण से यह प्रवाह रूक जाता है तो, उस विशिष्ट तंत्रिका या तंत्रिका मण्डल के प्रदाय क्षेत्र में निष्क्रियता आ जाती है। वायु दो प्रकार से आभ्यंतर कारणों से प्रकुपित होती है, धातुक्षय और मार्गावरोध।

पक्षाघात के जो भी बाह्य कारण वर्णित हैं वे किसी न किसी रूप में इन दो में से कोई एक विकृति पैदा कर पक्षाघात की उत्पत्ति करते हैं। रूक्ष, शुष्क, निस्सत्व, सड़े गले किसी एक ही रस के, बहुत ज्यादा पकाए आहार तथा लंघन, अतिश्रम आदि से शरीर में धातुओं की कमी होती है। प्रमेह राजयक्ष्मा, जीर्णज्वर, रक्तस्राव रोग, दीर्घ कालीन अतिसार, प्रवाहिका, यकृत रोग आदि कुछ रोगों से भी धातुक्षय होकर पक्षाघात की सम्प्राप्ति बन सकती है। ठीक इसके विपरीत सदैव चिकनी, तली चीजें, अभिष्यंदी पदार्थ खाना, मोटापा, रक्त में मेदीय तत्व (कोलेस्टेराल) बढ़ने, रक्त में थक्कों के जमाव की प्रवृत्ति आदि से मार्गावरोध और तज्जन्य वात प्रकोप से पक्षाघात होता है।

बचाव हर हाल में बेहतर

किसी भी व्याधि का बचाव उसके इलाज से कभी भी बेहतर होता है खासकर पक्षाघात जैसे दीर्घकालीन और बहुउपद्रव युक्त व्याधियों में। ऊपर बताये कारणों का परित्याग बचाव का आसान तरीका है। व्यंजक कारणों की तरह कार्य करने वाला मधुमेह, उच्चरक्तचाप, धमनी की कठोरता आदि व्याधियों से बचना अत्यन्त जरूरी है। ४०–४५ वर्ष की उम्र के बाद भले ही कोई लक्षण न हो इन व्याधियों की सम्भावनाओं का निराकरण कर लेना उपयुक्त होता है। आहार में तीक्ष्ण लवण बहुल, स्निग्ध, तली चीजें, मद्य, क्षोभक पदार्थ नहीं खाना चाहिये। विहार की दृष्टि से अतिपरिश्रम, भूखे पेट श्रम करना, रात्रि जागरण, शिर पर बोझ उठाना, आघात आदि से बचना चाहिये। पेट साफ रखना, पूरी नींद लेना, सप्ताह में कम से कम दो बार तैल की मालिश करना, हल्का व्यायाम, प्रातः भ्रमण, भोजन में लहसुन, अदरख, तेजपत्र लेना, साल में 2–3 बार मृदु शोधन (स्निग्ध विरेचन, अल्प वमन) करना पक्षाघात के प्रतिषेध में पर्याप्त प्रभावी हैं। उच्चरक्तचाप जो कि पक्षाघात के 75 प्रतिशत रूग्णों में पूर्ववृत्त के रूप में मिलता है, के प्रतिरोध के लिये योगासन तथा ध्यान की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है।

सुगम नहीं है उपचार

पक्षाघात के उपचार में मात्र आयुर्वेदीय उपचार यशस्वी है विशेषतः कुछ पंचकर्म की क्रियाएं। चूंकि पक्षाघात में विकृति जटिल और व्यापक होती है तथा उपद्रव बाहुल्य रहता है अतः कोई एक औषधि पूर्ण लाभकारी नहीं है। नये अनुसंधान कार्यों से यह तथ्य प्रकट हुआ है कि अन्तः बाह्य, शमन, शोधन उपचार विधियों का सन्तुलित प्रयोग पक्षाघात में अधिक उपयोगी है।

पक्षाघात में पित्त या कफ का अनुबन्ध प्रायः मिलता है। पित्त के कारण दाह, संताप तथा

शेष पृष्ठ २१ पर

हैजे से बचाव कैसे करें

* सड़े, गले, कटे व खुले फल या अन्य खाने की चीजें जिन पर मक्खियाँ बैठी हों, कभी न खाएं।

* खाने पीने की चीजों को ढककर रखें और उन पर मक्खियों को बैठने से बचायें।

* शौच (टट्टी) के बाद साबुन से हाथ धोएं।

* इधर उधर खुले मैदान में शौच (टट्टी) न करें। शौचालय का प्रयोग करें।

* पीने का पानी साफ बर्तन में ढककर रखें व उसमें से पानी निकालते समय पानी में हाथ न डुबोएं। बल्कि किसी दूसरे साफ बर्तन से ही पानी निकालें।

* यदि पानी की शुद्धता में जरा भी सन्देह हो तो पानी को उबालकर ठंडा करके पिएं।

* जहाँ तक सम्भव हो ताजा व गर्म खाना ही खाएं। बासी खाना कभी न खाएं।

* घर का कूड़ा करकट ढक्कनदार कूड़ेदान में ही फेकें और मक्खियों की पैदावार को रोकें।

* पानी के मटके व बाल्टी में क्लोरीन की गोली डालें। यह नजदीक की दवा की दुकान से प्राप्त की जा सकती है।

* दस्त व उल्टी (कै) होते ही रोगी को नजदीक के अस्पताल में तुरन्त ले जाएं।

प्रसारित : राज्य स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो, उ.प्र., जवाहर भवन, लखनऊ

योग
साधना या व्यायाम ?

वैद्य मदन लाल, लखनऊ

तदादृष्टुः स्वरूपे वस्थानम्।

युज् धातु से योग शब्द सिद्ध होता है। जिसका अर्थ मिलना–जुलना होता है। *"युज्यतेऽसौ योगः"* जो युक्त करे, मिलावे उसे योग कहते हैं। योगदर्शन के भाष्यकार ऋषि व्यास ने *"योगस्समाधिः"* ऐसा कहकर योग को समाधि बताया है। भगवान श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में *"योगः कर्मसु कौशलम्"* कहकर किसी भी कार्य को कुशलता या दक्षता से पूर्ण करने का नाम योग कहा है। योग सूत्र में पतन्जलि ने *"योगश्चित्तावृत्तिनिरोधः"* अर्थात् चित्त की वृत्तियों को निरुद्ध का नाम योग है।

आत्मा के स्वभाविक गुण ज्ञान और कर्म (प्रयत्न) हैं। जीव का यह ज्ञान और प्रयत्न रूप पुरुषार्थ जीव के बाहर जगत में भी काम करता है और जीव के अन्दर भी। जब वह बाहर काम करता है तब उसका नाम बहिर्मुखी वृत्ति होता है तथा जब अन्दर काम करता है तब उसका नाम अन्तर्मुखी वृत्ति होता है। जीव कर्मशील है इसलिये दोनों वृत्तियों में से एक न एक हमेशा जारी रहती है। यदि बहिर्मुखी बन्द होती है तो अन्तर्मुखी वृत्ति स्वयमेव काम करने लगती है और जब अन्तर्मुखी बन्द होती है तब बहिर्मुखी वृत्ति स्वयं अपना कार्य प्रारम्भ कर देती है। बहिर्मुखी वृत्ति जब काम करती है तब जीव अन्तःकरणों के माध्यम से जगत में इन्द्रियों द्वारा कार्य करता रहता है परन्तु अन्तर्मुखी वृत्ति जागृत होने पर जीव आत्मानुभव और परमात्मदर्शन करता रहता है।

योग साधना के लिये प्रशस्त योग्य और कुलीन वही व्यक्ति हैं जिनमें इतने गुण पाये जाते हैं – विद्याभ्यास में तत्पर, जितेन्द्रिय, शान्तचित्त, साम्यवादी, गुरू सेवा में तत्पर, माता–पिता की सेवा करने वाला, विधि के अनुकूल कर्म करने वाला, शुद्ध और पवित्र, स्नानादि तथा पूजन–हवनादि कर्मों में तत्पर, स्वधर्म में श्रद्धालु, आर्जवगुणयुक्त, कुलीन एवं उत्तमशीलयुक्त।

योग साधना में मुख्य बात आत्मा, मन और शरीर की है। आत्मा का सम्बन्ध मन और शरीर से है। शरीर जड़, स्थूल और जीर्ण–शीर्ण (शीर्यते इति शरीरं) होने वाला है और मन सूक्ष्म, अत्यन्त चंचल है। शरीर का ज्ञान न होने पर मन का ज्ञान कठिन है। यदि मन का ज्ञान हो गया तो आत्मा का ज्ञान और क्लिष्ट है। यदि मन की चंचलता से बाधित न होकर मन के परे देखने का यत्न किया जाय तो आत्मा का दर्शन होना सम्भव है। शरीर मन और आत्मा इस त्रयी में आत्मा ही केवल चेतनारूप है तथा मन से भी अत्यन्त अदृश्य है। शरीर के अन्दर मन और मन के अन्दर आत्मा है। एक थैली में दूसरी थैली (प्याज़ के छिलके की तरह एक छिलके के अन्दर दूसरा छिलका)। शरीर के स्वस्थ होने पर ही मन स्वस्थ और सुखी रहता है तथा मन के स्वस्थ और अस्वस्थ होने पर शरीर भी वैसा ही हो जाता है। आत्मा अमर है। मन और शरीर ये दो उसके पहनने के वस्त्र हैं। जब ये वस्त्र जीर्ण हो जाते हैं तब वह (आत्मा) दूसरा वस्त्र पहन लेती है अर्थात् द्वितीय जन्म धारण करता है। आत्मा की प्रेरणा मन में और मन की प्रेरणा शरीर में हो रही है। शरीर और मन, आत्मा के सहायक बनें, ऐसा सुयोग्य बनना ही योग्य है।

आयुर्वेद के आठ अंगों की तरह योग के भी आठ अंग हैं : यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

यम दस हैं : अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धृति, दया, आर्जव, मिताहार और शौच्।

नियम भी दस हैं : तप, सन्तोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वर–भक्ति, सिद्धान्त श्रवण, ह्री, मती जप और हवन।

यम के अनुकूल कार्य या व्यवहार करने पर बाह्य वातावरण या पर्यावरण परिष्कृत होता है। सर्वप्रथम घर का वातावरण सुन्दर होने से घर ही में स्वर्ग सा अनुभव होने लगता है। पश्चात् समाज का, गाँव का, जनपद का, देश-प्रदेश का वातावरण सुन्दर होता है, तत्पश्चात् राष्ट्र का वातावरण सुदृढ़ और प्रशंसनीय होने लगता है। नियम को अपने शरीर में अनुकूल रूप में ढालना पड़ता है। नियम में कहे गये दस आदेशों पर चलने से मनुष्य का आचरण, विचार, स्वभाव आदि बिन्दुओं में पवित्रता आने से अन्तः वातावरण शुद्ध, पवित्र और निर्मल हो जाता है। तीसरा अंग आसन है, इसे योगासन भी कहते हैं। नियमित रूप से आसन करने पर शरीर में खिंचाव के माध्यम से नस नाड़ियों में फेफड़े, हृदय, यकृत, प्लीहा, पैंक्रिया, दोनो वृक्क, श्रुद्रान्त्र, बृहदन्त्र आदि अन्तः शारीरिक अंगों में रक्त संचालन तथा व्यायाम होने से शरीर स्वस्थ व नीरोग हो जाता है। नीरोग होने से आयु लम्बी होती है। आसन ८४ प्रकार के हैं तथा इससे भी अधिक आविष्कृत किये जा सकते हैं।

चौथा अंग प्राणायाम है : योगियों में प्राणायाम की बड़ी उपयोगिता है। प्राणायाम से आकाश पर तम आदि से जो आवरण आ जाता है वह क्षीण हो जाता है। प्राणायाम से शारीरिक और मानसिक उन्नति भी होती है। प्राण व आयाम अर्थात् शुद्ध वायु जो प्राणवायु है उसका आयाम यानि नासिका द्वारा खींचा हुआ रक्त का फेफड़े में जाना तथा अशुद्ध रक्त को शुद्ध करना और शरीर के सूक्ष्मातिसूक्ष्म नाड़ियों में भी प्राणवायु का जाना। इसी प्राणवायु से शरीर के अन्तः तथा वाह्य भागों में गति होती है। व्यापक रूप से प्राणायाम के तीन विभाग हैं – पूरण, कुम्भक और रेचक। कुम्भक के आठ भेद हैं, अर्थात् प्राणायाम के आठ भेद हैं – सूर्यभेद, उज्जायी, शीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा तथा प्लावनी।

मनुष्य के अन्दर सत्वगुण पर तमस् और रजस् का पर्दा पड़ा रहता है, जिससे अनेक दोष आते रहते हैं, परन्तु प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से रजोगुण और तमोगुण का ह्रास होकर सतोगुण की वृद्धि हो जाती है तथा मनुष्य दोषों से मुक्त होकर पवित्र बुद्धि वाला, निरोगी और अधिक आयुवाला हो जाता है।

मनुस्मृति का वचन है :

दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथादेहस्य दह्यन्तेदोषाः प्राणस्य निग्रहात्।।

अर्थात् अग्नि में तपाये हुए स्वर्णादि धातुओं का मल जल जाता है, उसी तरह प्राणायाम के द्वारा इन्द्रियों के दोष नष्ट हो जाते हैं।

पाँचवाँ अंग प्रत्याहार है : *स्वविषयासंप्रयोगचित्तस्य स्वरूपाऽनुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।*

प्रत्याहार का मतलब इन्द्रियों का अपने-अपने विषयों से पीछे हटना। स्पष्टार्थ – जब चित्त इन्द्रियों से मेल न रखकर अपने स्वरूप में स्थित हो जाए तब उसकी निरुद्धावस्था होती है। चित्त की इसी निरुद्धावस्था का अनुगमन करके जब इन्द्रियाँ भी अपने-अपने विषय से मेल न रखकर निरुद्ध हो जाएं तो इस अवस्था को प्रत्याहार कहते हैं। इस प्रत्याहार से इन्द्रियाँ पूर्णतः वश में हो जाती हैं।

छठा अंग धारणा है : "देशबन्धश्चित्तस्य धारणा", अर्थात् चित्त का (मन का) किसी देश में बाँधना धारणा कहलाता है। देश से मतलब है, अपने शरीर के नाभिचक्र, हृदय कमल, आज्ञाचक्र, नासिका के अग्रभाग, ब्रह्मरन्ध्र आदि।

सातवाँ अंग ध्यान है : "तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्" अर्थात् उस धारणा में प्रत्यय (ज्ञान) का एक सा बना रहना ध्यान कहलाता है। स्पष्टार्थ – किसी देश विशेष (भ्रूमध्य आदि) में मन का ठहरना धारणा कहलाता है। यह चित्त का ठहराव जब स्थिर हो जाए तथा ध्येय का ज्ञान एक जैसा बना रहे और दूसरा किसी प्रकार का ज्ञान चित्त में न आवे तो इस अवस्था का नाम ध्यान कहलाता है।

आठवाँ और अन्तिम अंग समाधि है : *"तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः"* अर्थात् उसी ध्यान में जब अर्थ (ध्येय) मात्र का प्रकाश रह जाए और ध्याता अपने रूप से शून्य की तरह हो जाए तब उस अवस्था का नाम समाधि है। स्पष्टार्थ – ध्यान और समाधि में अन्तर यह है कि ध्यान में ध्याता, ध्यान और ध्येय का (इन तीनों का) ज्ञान योगी को रहता है; परन्तु समाधि में अर्थ (ध्येय) मात्र का प्रकाश रह जाता है। ध्याता और ध्यान ये दोनों रहते ज़रूर हैं; परन्तु इन दोनों का स्वरूप शून्य सा हो जाता है। ध्याता पर ध्येय का पूर्ण आवेश हो जाता है। फलतः ध्याता को अपनी सुध-बुध नहीं रहती और वह केवल ध्येय के प्रकाश में ही तल्लीन हो जाता है।

मनुष्य को योगीवत् आचरण करने से शान्ति, सुख तथा सन्तोष की प्राप्ति होकर साथ-साथ यदि अनवरत लगन लगती रहे तो समाधि तक पहुँचा जा सकता है। इसे निरन्तर अपने में सचेष्ट होकर प्रयोग करना पड़ता है। क्लिष्ट तो जरूर है; परन्तु परिणाम बड़ा ही सुखद और उज्जवल है।

बरसाती फुंसियाँ

वैद्य के.के. पाण्डेय, लखनऊ

फुंसी वर्षा ऋतु में बहुतायत से होने वाला एक चर्म रोग है, जो महा कष्टदायक है। यह वर्षा ऋतु में गरम एवं आर्द्र वातावरण के कारण होता है। ये फुंसियां वर्षा की पहली फुहार से ही प्रारम्भ हो जाती हैं। वैसे ये अन्य ऋतुओं में भी हो सकती हैं। ये सफाई के अभाव और दूषित जल के सेवन से भी होती हैं।

फुंसी रोग के कुछ अन्य कारण

- शरीर में किसी पुराने मर्ज के कारण शरीर की प्रतिरक्षात्मक शक्ति की कमी
- तंत्रिका तंत्र तथा पाचन सम्बन्धी रोग
- विटामिनों की कमी
- मधुमेह (डायबिटीज)

यदि उपर्युक्त रोग हों तो फुंसी के रोगियों में पीब बनने की ज्यादा गुंजाइश होती है। यह एक छुआछूत का रोग है। जहाँ यह बच्चों के लिए तकलीफदेह है तो माता-पिता के लिए चिन्ता का विषय है।

इस रोग के फैलने का सबसे बड़ा कारण गंदगी है। साफ-सुथरे स्थान पर रहना, साफ-सुथरे जल से स्नान, स्वच्छ एवं अच्छी तरह सुखाये कपड़े पहनना, साफ जल को पीना स्वच्छ स्थान पर बैठकर खाना-पीना इस रोग से बचाव के अचूक उपाय हैं। कुपोषण के शिकार एवं गंदगी में रहने वाले बच्चों एवं व्यक्तियों को यह रोग जल्दी घेर लेता है।

रोकथाम के उपाय

- शरीर की स्वच्छता, घर के आसपास की स्वच्छता; रोगी के कपड़ों व इस्तेमाल की चीजों को स्वस्थ व्यक्ति के संपर्क से दूर रखना चाहिए।
- मवाद आदि साफ करने के बाद रुई-पट्टी को जला दें या मिट्टी में दबा दें। मरीज के स्पर्श से बचें।
- मरीज के कपड़ों को रोज उबालकर धोएं।

चिकित्सा

- हल्दी पाउडर ५ ग्राम व १२ ग्राम सरसों के तैल को मिलाकर फुंसियों पर लगाने से फुंसियाँ ठीक हो जाती हैं।
- कूंठ ९ ग्राम को १० ग्राम सरसों के तेल में मिलाकर लगाने से फुंसियों में लाभ पहुँचता है।
- हल्दी, चिरायता, त्रिफला, रक्त चन्दन को सममात्रा में लेकर चौगुने तिल तेल में पकाकर फुंसियों में लगाना चाहिए।
- नीम के बीज का तेल ५ ग्राम २ बार बतासे में रखकर खाने से फुंसियां ठीक हो जाती हैं।
- अपराजिता की जड़ १२ ग्राम व शुद्ध टंकण १२ ग्राम को पानी के साथ लेप बनाकर लगाने से फुंसियां ठीक हो जाती हैं।
- हरड़ के फल के चूर्ण को हल्दी के रस में मिलाकर लोहे के बर्तन में रख दें। हल्दी के रस के स्थान पर पानी में हल्दी का घोल का भी प्रयोग किया जा सकता है। इस लेप को प्रभावित भाग पर लगाने से रोग नष्ट होता है।
- थोड़ी सी हींग, कत्थे के पेड़ की छाल और नीम की पत्तियों को पीस कर लगाने से लाभ होता है।

पृष्ठ १७ का शेष

पक्षाघात ....

मूर्च्छा एवं कफ के कारण शीतता, शोथ, गुरुता आदि लक्षण मिलते हैं। इनका ध्यान रख कर ही औषधि तथा उपचार विधि का चयन करना चाहिये।

सर्वप्रथम मेध्य रसायन जैसे ब्राह्मी, शंखपुष्पी, जटामांसी, अश्वगंधा, मधुयष्टि आदि का प्रयोग करना चाहिये इनसे रोगी का मस्तिष्क शान्त रहता है, रक्तचाप नहीं बढ़ता, मस्तिष्क के निष्क्रिय केन्द्र पुनः सक्रिय होते हैं। रोग तथा रोगी की स्थिति के अनुसार नाड़ियों को शक्ति देने वाली औषधियों तथा वातघ्न औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। स्वर्णभस्म, ताम्रभस्म, लौहभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, अभ्रकभस्म, मोती तथा प्रवाल का भस्म या पिष्टि आदि धातुयोग तथा रास्ना, बला, अश्वगंधा, शतावरी, शुंठी, गिलोय, पुनर्नवा, अजवाइन, आदि काष्ठौषधि बहुत लाभकारी हैं। स्वरभंग, वाक्संग में वचाचूर्ण का, जिह्वा प्रतिसारण (जीभ का घिसना) यानी खाने में असमर्थता पर नारायण तैल का गण्डूष धारण करना, मूत्र न रुकने पर चन्द्रप्रभावटी, अनिद्रा पर ब्राह्मीवटी, शोष पर महामाष तेल अभ्यंग, मल नियंत्रण न रहने पर बल्य औषधियों के काढ़े तथा बला तैल की बस्ति बहुत लाभकारी है।

लोक स्वास्थ्य परंपरा संवर्धन समिति (लोस्वापसंस)
के
प्रमुख प्रकाशन

प्रकाशन का नाम	अवधि	मूल्य	पता
समाचार पत्रक (अंग्रेजी)	चार मास पर	निःशुल्क सदस्यों के लिए	लोस्वापसंस पो. बा. नं. ७१०२ कोयंबटूर – ६४१ ०४५
कंपाउंड फार्म्यूलेशन	आवश्कतानुसार	२५ रु.	"
कंपाउंड फार्म्यूलेशन	आवश्यकतानुसार	२५ रु.	"
मातृ एवं शिशु स्वास्थ्योपयोगी औषधीय पौधे	"	"	"
प्राथमिक स्वास्थ्य में लाभकारी वनौषधियां भाग – १	"	"	"
प्राथमिक स्वास्थ्य में लाभकारी वनौषधियां भाग – २	"	"	"
विष चिकित्सा पर हस्तपुस्तिका	"	१५ रु.	"
जीवनीय (हिन्दी) (लोक स्वास्थ्य की पत्रिका)	द्वैमासिक	३० रु.	लोस्वापसंस, ई – III/ २५०, सेक्टर – एच लखनऊ – २२६०२० (उ.प्र.)
जीवनीय (अंग्रेजी)	"	"	"
समाचार पत्रक (हिन्दी)	चार मास पर	निःशुल्क	"
तुलसी वनौषधि पर आकर्षक सचित्र पोस्टर		पाँच रु.	"
मोनोग्राफ स्थानीय स्वास्थ्य परंपराएं (मोनोग्राफ) (हिन्दी)	चार मास पर	३० रु.	"
भारतीय चिकित्सा पद्धति में पोषण भाग –१			पी.पी.एस.टी. फाउंडेशन
मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य भाग – १	"	"	२९, चार मेन रोड, गांधीनगर, अड्यार, मद्रास – ६०००२०
मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य भाग –२	"	"	"
मर्म चिकित्सा	"	"	"

द्रोणपुष्पी

कुछ आदिवासी अनुभव

वैद्य मायाराम उनियाल, दिल्ली

द्रोणपुष्पी (गुमा) को प्रायः सभी लोग जानते एवं पहचानते हैं। औषधीय महत्व का यह पौधा सर्वत्र ऊसर भूमि में, खेतों एवं सड़कों के आस-पास स्वयंजात पाया जाता है। घरेलू एवं पारम्परिक चिकित्सा में गुमा का प्रयोग किया जाता है। द्रोणपुष्पी का पंचांग स्वरस एवं क्वाथ विषमज्वर (मलेरिया) एवं शरीर स्थित विषों को बाहर निकलने में अच्छा लाभ करता है। इस वनस्पति का विशेष विवरण निम्न है –

भाषावार नाम : संस्कृत – द्रोणपुष्पी; हिन्दी – गुमा, गूमा; लैटिन – *ल्यूकास सिफेलोटस् ।*

यह वनस्पति उष्ण प्रदेशों में वर्षाकाल में प्रायः सर्वत्र पाई जाती है। इसका पौधा एकवर्षायु, रोमश, चतुष्कोणीय, मृदु होता है। पत्ते – अण्डाकार, प्रासवत्, एवं दन्तुर होते हैं। पुष्प – गुच्छों में श्वेत गोल होते हैं। पुष्प की आकृति दोने जैसी होती है। इसलिए इसे द्रोणपुष्पी कहते हैं। इसकी कई किस्में पाई जाती हैं।

पुष्पकाल : अगस्त, सितम्बर।

औषधीय गुण-धर्म : गुण – गुरु, रुक्ष, तीक्ष्ण।

गूमा (द्रोणपुष्पी)

वैद्य एस. ए. खान, लखनऊ

गुण

यह मधुर कटु, लवण, तिक्त चार रसों से युकत होता है। विपाक में मधुर एवं उष्ण- वीर्य (गरम) होता है। इसका रस क्षारीय एवं रूक्ष होता है।

दोषों पर प्रभाव : यह उत्तम कफशामक और वात पित्तवर्धक होता है।

रोगों पर प्रभाव : आम दोष (मन्दाग्नि होकर आम रस का बनना) सूजन, कामला, पेट के कीड़े, कफज खांसी और कफजज्वर, प्रतिश्याय, कब्ज, प्रमेह, कफज शिरःशूल, यकृत शोथ आदि में लाभकारी है।

विभिन्न रोगों में उपयोग

• पीलिया में इसका स्वरस (पंचाग का) १० मिली से २० मिली, दूध या मधु के साथ देना चाहिये तथा इसका स्वरस नेत्रों में डालने से नेत्रों का पीलापन समाप्त होता है।

मधुमेह में इसके पंचांग का २० से २५ मिली स्वरस, त्रिफला क्वाथ में हरिद्राचूर्ण (३ ग्राम) डालकर प्रातः शाम देना चाहिये।

• कफज शिरःशूल और प्रतिश्याय में इसके पत्रों का स्वरस नस्य की तरह दोनों नथुनों में डालकर सुकड़ना चाहिये।

• कब्ज में इसके पत्तों का साग बनाकर खिलाना चाहिये। इससे कब्ज खत्म होकर भूख खुलकर लगेगी और यकृत की क्रिया ठीक प्रकार से होगी।

• कफज ज्वर और उदर कृमि में इसके क्वाथ में वायविडंग का चूर्ण ३ ग्राम डालकर पीने से लाभ होता है।

विशेष : कामला रोग में मैंने इसके २५ मिली स्वरस को दूध से प्रातः शाम पिलाकर और मकोय का साग या स्वरस पिलाकर पूर्ण स्वास्थ्य लाभ देखा है। पित्त वर्धक पदार्थों से परहेज अवश्य रखा गया।

रस: कटु, लवण, मधुर। विपाक – मधुर।

वीर्य : गरम (तासीर)।

प्रधानकर्म : ज्वरनाशक, पित्तशोधक, विषघ्न, आर्तवजनन, कफघ्न।

प्रयोग

इसके पंचांग का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है।

- विषमज्वर में गूमा पंचांग स्वरस के साथ शुद्ध टंकण (सुहागा) शहद के साथ दिन में दो या तीन बार एक माशा की मात्रा में सेवन करने से लाभ होता है।
- सिर के दर्द में गुमा स्वरस तथा चूर्ण का नस्य लाभ करता है।
- प्रतिश्याय में पुष्प स्वरस एवं फाण्ट शहद एवं टंकण के साथ प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है।
- कामला (पीलिया) में ग्रामीण लोग पुष्प स्वरस का अन्जन करते हैं।
- आध्यमान (अफारा) एवं उदरशूल में क्वाथ एवं स्वरस लाभ करता है।
- खुजली एवं रक्त विकारों में पत्र स्वरस का बाह्य एवं आभ्यन्तरिक प्रयोग लाभ करता है।

अध्ययनों से पता चला है कि द्रोणपुष्पी का प्रभाव विषमज्वर, सामान्यज्वर, कामला, रक्तविकार एवं शरीर स्थित विषों को बाहर निकालने में कारगर है।

द्रोणपुष्पी का उपयोग अनेक जन-जातियों द्वारा रोग निवारण में किया जाता है। बाँदा (उ.प्र.) की जन-जातियां इसके क्वाथ का उपयोग मलेरिया जैसे तेज ज्वर में करते हैं। संथाल परगना (बिहार) की जन-जातियाँ इसका उपयोग सिरदर्द, आँख के रोग एवं सर्पदंश में करते हैं।

डॉ. जनार्दन सिंह, लखनऊ

पत्रिका के मुफ्त ग्राहक बनें

इस योजना के अंतर्गत हम अपने उन पाठकों को एक वर्ष तक मुफ्त में पत्रिका भेजेंगे जो "जीवनीय" पत्रिका के लिए पाँच नये ग्राहक बनायेंगे। इसमें पाठक, पाँचों नये ग्राहकों के सदस्यता शुल्क डिमांड ड्राफ्ट से **"एल.एस.पी.एस.एस. – जीवनीय"** *के नाम भेजें तथा साथ में उनके पूरे पते भी।*

तुलसी पर रंगीन पोस्टर मुफ्त

यदि आप जीवनीय के दो वर्ष या उससे भी अधिक समय के ग्राहक बनते हैं तो हम आपको उपहार स्वरूप तुलसी पर एक रंगीन पोस्टर (५८ सेमी. x ४५ सेमी.) भेंट करेंगे। इस आकर्षक पोस्टर में उसके औषधीय गुण व लाभकारी प्रयोगों का वर्णन है।

जीवनीय के सदस्य बनिये *और* **मुफ्त पोस्टर** *प्राप्त कीजिये*

यह योजना सिर्फ २ अक्टूबर ९१ तक ही उपलब्ध है।

वार्षिक शुल्क में ६ रु. बचायें

जीवनीय, अपने वार्षिक सदस्यता शुल्क में २०% की छूट प्रदान करती है। इस योजना के आधार पर पाठक मात्र २४ रु. में ही साल भर के लिए जीवनीय पत्रिका प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए आपको उन २० व्यक्तियों के नाम व पते लिखकर हमको भेजना है जो आपके विचार में जीवनीय की सदस्यता लेने के इच्छुक हों।

जीवनीय मुफ्त में प्राप्त करें – *आपके द्वारा सुझाए गये २० नामों में से यदि कोई भी ८ लोग पत्रिका की सदस्यता स्वीकार करते हैं तो आप साल भर तक के लिए* **जीवनीय मुफ्त** *में पाते रहेंगे या आपके द्वारा बताये किसी भी व्यक्ति को हम यह उपहार दे सकते हैं लेकिन शर्त यह है कि वह भारत में रहता हो।*

औषधीय पौधा

पीलिया में लाभकारी

कासनी

डॉ. मोहम्मद अताउल्लाह शरीफ व डॉ. शेख इमामे हैदराबाद

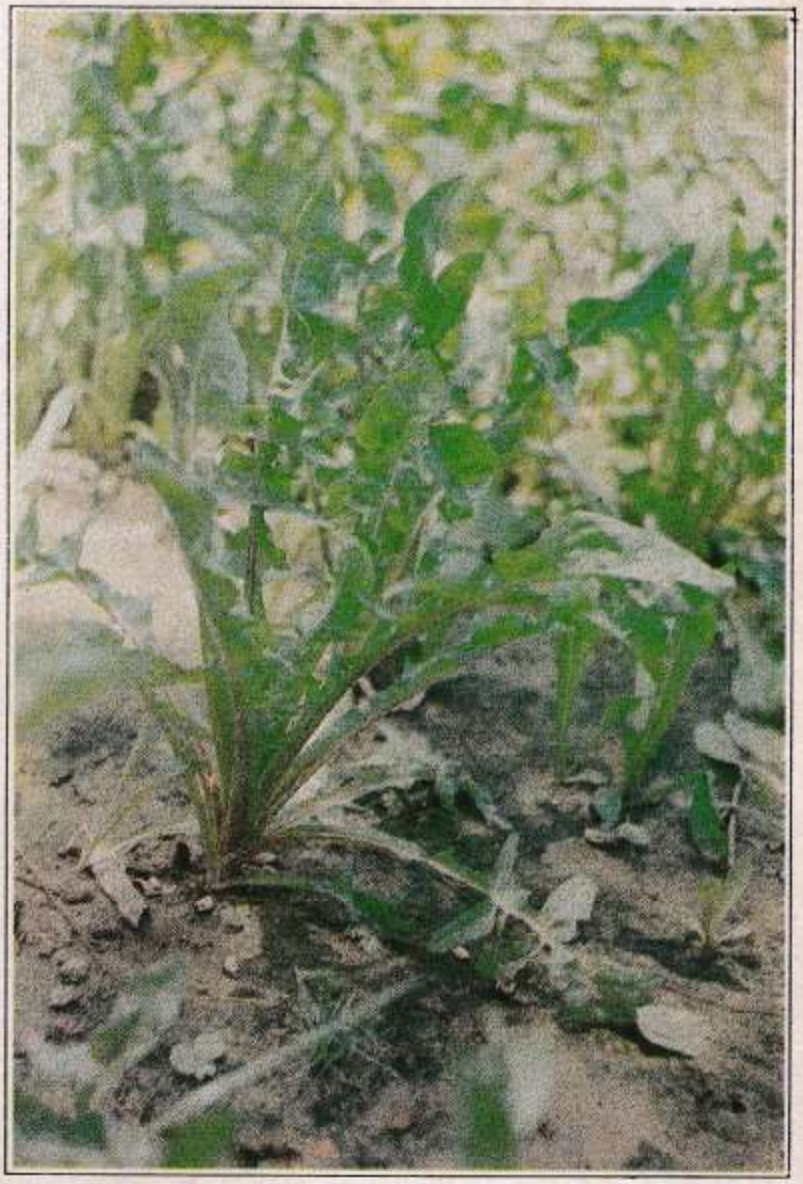

कासनी आयुर्वेद व यूनानी चिकित्सा पद्धति में एक मुख्य औषधीय पौधा है। यूनानी चिकित्सक इस वनौषधि का प्रयोग यकृत, प्लीहा व आमाशय की बीमारियों में करते हैं। बर्ग – ए– कासनी चपटी पालक की पत्तियों के समान दिखती है। जाड़े के मौसम में इसके पौधे अधिक देखने को मिलते हैं। कासनी के फूल चमकदार नीले रंग के होते हैं। इसके बीज छोटे व मटमैले रंग के तथा स्वाद में कुछ कड़वे लगते हैं। यह पौधा भारत के उत्तर–पश्चिम भागों पंजाब, कश्मीर आदि क्षेत्रों में अधिकतर पाया जाता है। यूनानी चिकित्सा पद्धति में समूचे पौधे को ही उपयोग में लाया जाता है जो बर्ग–ए– कासनी तथा बीख–ए– कासनी के नाम से बाजार में आसानी से उपलब्ध है।

भाषावार नाम : हिन्दी, गुजराती, बंगला – हिंदुबा, कासनी; तेलुगु – कासनी, वेदुल्लु; तमिल – कासनी विरई; पंजाबी – हंड गुल सूचल; अंग्रेज़ी – वाइल्ड चिकोरी; लैटिन – *चिकोरियम इंटिबस।*

कासनी दो प्रकार की पाई जाती है।

(१) उगाई हुई – मीठी कासनी, व (२) वनीय – कड़वी कासनी, हालाँकि यूनानी चिकित्सकों के मत से कासनी के तीन प्रकार हैं प्रथम – फुसतनी जिसे हिन्दबा नाम से जानते हैं। दूसरी – दश्ती – जिसे हिन्दबा–ए–बक्खल नाम से जानते हैं। तीसरी प्रकार की कासनी को बर्री नाम से

शेष पृष्ठ ४३ पर

दादी माँ के नुस्खे

वैद्य बदलूराम रसिक, लखनऊ

सरस्वती – दादी जी! चरण स्पर्श।

दादी माँ – प्रसन्न रहो बेटी, आओ बैठो, कहाँ से आ रही हो?

सरस्वती – दादी माँ आजकल जहाँ देखो वहां कांवर (कामला) हो रही है। इसका क्या कारण है? आपने तो हजारों कांवर (कामला) के रोगी देखे होंगे और दवा भी बताई होगी।

दादी माँ – हाँ बेटी, एक बार कई बरस पहले घर–घर कांवर का रोग हो गया था बहुत से लोग मर गये थे पर बहुत से हमारी दवा से ठीक हो गये थे।

सरस्वती – तो दादी माँ पहले तो यह बतायें कि कांवर (कामला) कैसे होती है?

दादी माँ – अच्छा सुनो! बेटी, कांवर हमारी समझ से इस प्रकार होती है – जो औरतें बच्चा पेट में आने पर मिट्टी ज्यादा खाती हैं जो अचार, सिरका, खटाई, लाल मिर्च, नमक तथा बहुत गरम चीजें खाती हैं उनका जिगर खराब हो जाता है। खून बनना कम हो जाता है ऐसी गर्भवती औरतों का बच्चा पैदा होने के १–२ महीना पहले से शरीर पीला पड़ने लगता है और कांवर हो जाती है। बच्चा दुबला, पतला, पीला पैदा होता है। बहुत मछली, मांस, अण्डा, मुर्गा खाने वाली गर्भवतियों का भी जिगर खराब हो जाता है तथा हाजमा बिगड़ जाता है, दस्त आने लगते हैं, पेचिश हो जाती है, खून बनना कम हो जाता है। गरम चीजें अधिक खाने से पित्त दूषित हो जाता है और कांवर हो जाती है। इसके अलावा बरसाती नदियों, झरनों, कुँओं का पानी पीने या बासी भोजन करने से भी कांवर हो जाती है। पहली बरसात में बहकर आई मछलियों को खाने से हजारी अहीर की दुल्हिन को भयंकर कांवर हो गई थी, बड़ी दवाई करने के बाद छह महीने में अच्छी हुई थी।

सरस्वती – दादी माँ, आपने जो कांवर की उत्पत्ति के कारण बताये हैं वह हमने लिख लिये हैं अब कामला के लक्षण भी बताइये।

दादी माँ – जिस को कांवर होती है, पहले उसको भूख नहीं लगती है, शरीर में सुस्ती आ जाती है, नींद बहुत आती है, खाने के बाद या पहले मतली होती है, आँखों में, हाथ के नाखूनों तथा हाथ में पीलापन आ जाता है, पेशाब भी पीला हो जाता है कभी पतला, कभी काला रंग का पाखाना होता है, किसी को पाखाना होता ही नहीं है। खाना या पानी का स्वाद ही नहीं मिलता है पेट में हल्की सूजन तथा जिगर कड़ा हो जाता है इसी से पता चलता है कि रोगी को कांवर हो गई है।

सरस्वती – दादी माँ, आपने जो बताया हमने लिख लिया है। अब कांवर के उपचार के लिए अपने तजुर्बे वाली दवाइयाँ भी बताइये।

दादी माँ – लिखो बेटी – हम ५० बरस से जो–जो दवाइयाँ बताती हैं या देती हैं वह इस प्रकार हैं–

(१) कुटकी – दवा बेचने वाले पंसारी की दुकान पर मिलती है। ५० ग्राम लेकर इसे पीस, छानकर शीशी में भर लें और आधा–आधा ग्राम की पुड़िया बना लें। ४–४ घन्टे पर १–१ पुड़िया १ चम्मच चीनी के साथ देने से ७ दिन के अन्दर कांवर दूर हो जाती है।

(२) कासनी २ ग्राम, गोखरू छोटा २ ग्राम, धनिया २ ग्राम, खीरा–ककड़ी के समूचे बीज २ ग्राम, सौंफ २ ग्राम, पंसारी की दुकान से ले आयें यह १ मात्रा है। इन सब औषधियों को कूटकर आधा लीटर पानी में स्टील के भगोने या मिट्टी के बरतन में भिगो दे। १२ घन्टे भीगने के बाद इसे आग पर पका लें चौथाई रह जाने पर उतार कर ठंडा होने पर छान लें और १ चम्मच चीनी डालकर पी लें। यह काढ़ा ८ दिन तक पीना चाहिये।

(३) मकोय की पत्ती हरी १० ग्राम, गुरच ४ अंगुल (१० ग्राम) भृंगराज की पत्ती हरी १० ग्राम, इनको थोड़े पानी से सिल पर पीसकर छान लें और स्टील की कटोरी में आग पर रखकर एक उबाल आने पर उतार कर १ चम्मच चीनी डालकर पिलायें। इसी तरह ८ दिन तक सुबह–शाम पिलाने से कांवर हो ठीक जाती है।

(४) लाल पुनर्नवा की जड़ १० ग्राम पानी में पीसकर, छानकर १ चम्मच चीनी डालकर दोनों समय पिलाने से ८ दिन में कांवर हो

जाती है।

(५) आम के वृक्ष की ताजी छाल को पानी ६ लीटर लेकर किसी बरतन बाल्टी, भगोना आदि में पकायें। पानी कम हो जाने पर उतार का ठंडा कर लें इसमें १ औंस गीला चूना (पान में खाने वाला) घोल दें। बाद में मोटे कपड़े से पानी को छान लें इस पानी से कांवर के रोगी को ५ से ७ दिन तक रोज ताजा बनाकर नहलाने से भी कांवर दूर हो जाती है। यह योग हजारों बार का अनुभूत है इसके साथ खाने की दवा भी ली जा सकती है। लिख लिया बेटी सब योग।

सरस्वती – हाँ दादी माँ, सब लिख लिया है।

दादी माँ – अब झाड़-फूँक अर्थात् तान्त्रिक योग सुनो और लिखो।

(१) देहात में एक पौधा २ फीट का होता है इसमें हरा फूल सफेद पुखुरी और फूल के ऊपर पत्ती होती है इसे गूमा या गुम्मा का पौधा कहते हैं इसकी डाल को लेकर आधा-आध इन्च के टुकड़े काट लें और १ सफेद, मजबूत धागे में १०८ टुकड़े बांधकर मंगल और इतवार को पहना देना चाहिये।

(२) लाल पुनर्नवा की जड़ को भी गूमा की भाँति काटकर १०८ की माला बनाकर मंगल और इतवार को पहना देना चाहिए।

(३) एक फूल की थानी में पानी भरें और कांवर वाले रोगी के हाथ में थोड़ा सा पान में खाने वाला गीला चूना लगा दें, हरी दूब घास थोड़ी सी लेकर रोगी को देकर कहें कि इसे हाथ में मलो और थाली में हाथ डाल दो फिर दूध हाथ में मलों और फिर थाली में हाथ डाल दो इस प्रकार सात बार हाथ डुबायें। यह क्रम ७ मंगल, इतवार करना चाहिये। इन सभी दवाओं के साथ औषधि भी खाई जा सकती है।

दादी माँ – लिख लिया बेटी।

सरस्वती – हाँ दादी माँ, लिख लिया अगर परहेज भी बता दें।

दादी माँ – देखो बेटी, किसी प्रकार का कोई भी रोग हो बिना परहेज के नहीं जाता है इसलिये परहेज हर रोग में जरूरी है। कांवर के रोगी को तेल, घी, हल्दी, मिर्च, अचार, सिरका, खटाई, गुड़, मांस, मछली, अण्डा, मुर्गा, अरहर की दाल, उरद की दाल, तली हुई चीजें, पूड़ी, पराठा, शोरबेदार सब्जी, बादी चीजें नहीं खानी चाहियें। दूध और खट्टा दही भी न लेना चाहिये। गेहूँ की रोटी, मूँग की दाल (बिना छौंक वाली), परवल, लौकी, तुरई, करेला, कमल की जड़, कच्चा केला, कच्चे पपीते की उबली हुई सब्जी जिसमें थोड़ा सा नमक, थोड़ा मसाला, हरा धनिया, पुदीने की हरी पत्ती डालकर खाना चाहिये। फलों में मुसम्मी, अनार, सन्तरा, आलूचा, अमरूद, नाशपाती, नागा, खीरा, ककड़ी, खरबूजा, तरबूज़ खाना चाहिये। रसों में गन्ने का रस शुद्ध साफ बिना बर्फ पड़ा पीना चाहिये। नाश्ते में गेहूँ का दलिया बिना दूध पड़ा चीनी डालकर, मूँग की दाल छिलका रहित उबाल कर लेना चाहिये। उबले हुए चने भी थोड़ी मात्रा में लिये जा सकते हैं। लइया या खील भी ली जा सकती है। मूँग की खिचड़ी भी ले सकते हैं। लिख लिया बेटी सब परहेज।

सरस्वती – दादी माँ, हमने सब लिख लिया है अब इसका प्रचार हम गाँव भर में करेंगे। अच्छा दादी माँ, हम चलती हैं, चरण स्पर्श।

स्नान के गुण

"गुणा दश स्नानशीलं भजन्ते बलं रूपं स्वरवर्णप्रशुद्धि।
स्पर्शश्च् गन्धश्च् विशुद्धता च श्रीः सौकुमार्य प्रवराश्च नार्यः।।"

(महाभारत) वैद्यकीय सुभाषित साहित्य अ. ८/२१

नित्यप्रति स्नान करने वाले को बल, रूप, स्वर और वर्ण की शुद्धता, स्पर्श और गन्ध, शरीर स्वच्छता, मुखश्री (मुख शोभा), तारुण्य और (विवाह में) सुन्दर स्त्रियां – ये दस लाभ होते हैं।

स्नान निषेध

"न स्नानमाचरेद् भुक्त्वा नातुरो न महानिशि।
न वासोभिः सहाजस्त्रं, नाविज्ञाते जलाशये।।"

मनु (वैद्यकीय सुभाषित साहित्य अ. ८/१२)

भोजन करने के बाद, रोग से पीड़ित होने पर, मध्य रात्रि में, बहुत वस्त्र पहन कर तथा अज्ञात जलाशय में स्नान नहीं करना चाहिये।

रोगियों के स्नान

"अशिरम्कं भवेत् स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणाम्।
आद्रेण वाससा वा स्यान्माज्रनं दैहिकं विदुः।।"

(जावालस्मृति) वैद्यकीय सुभाषित साहित्य अ. ८/१४

स्नान करने में (रोग, दुर्बलता, वृद्धावस्था इत्यादि के कारण) असमर्थता हो तब सिर छोड़कर नीचे स्नान करें अथवा गीले कपड़े से शरीर को पोछें।

पुरानी मदिरा नई बोतल

गर्भ निरोधक : रीठा

डॉ. हरि प्रकाश शर्मा, लखनऊ

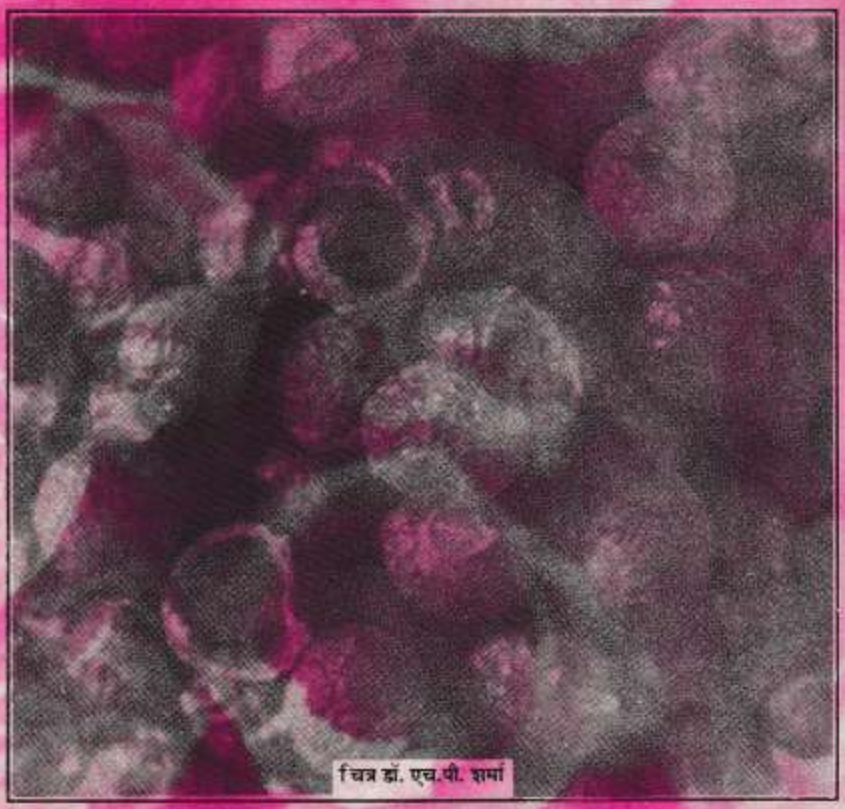

चित्र डॉ. एच.पी. शर्मा

भारतीय घरों में रीठा का प्रयोग काफी अरसे से होता आ रहा है। इसका प्रयोग महिलायें प्रमुखतः बाल धोने के लिए करती हैं। आजकल बालों के धोने के काम आने वाले शैम्पुओं में भी रीठा पड़ा रहता है। रीठा के इन गुणों के अलावा कुछ औषधीय गुण भी हैं जिनका आयुर्वेद व यूनानी चिकित्सा शास्त्रों में वर्णन मिलता है। अफीम के हानिकारक, प्रभाव को कम करने के लिए भी रीठा प्रयोग किया जाता है। आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र में यह त्रिदोष (वात, पित्त व कफ) शामक बताया गया है तथा इसकी तासीर गर्म व खुश्क होती है।

रीठा के प्रयोग से गर्भपात होता है, तथा गर्भपात के बाद गर्भाशय की शुद्धि व मासिक स्राव की नियमितता के लिए रीठा की बनी पिच्छु (फाहा) योनि मार्ग में रखी जाती है। इसको कम मात्रा में प्रयोग करने से खुलकर भूख लगती है फेफड़ों में जमा कफ ढीला होकर निकलता है तथा पेट में जमा गैस भी बाहर निकलती है। अधिक मात्रा में रीठा खा लेने पर उल्टी होती है इसी गुण के कारण अफीम व इसी तरह के अन्य द्रव्यों के कुप्रभाव को शरीर से बाहर निकालने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। सिर दर्द विशेषकर आधे सिर का (अधकपारी), नाक बंद होने की स्थिति में तथा मिर्गी में रीठा का नस्य लाभकर होता है। इसके अलावा त्वचा के रोग जैसे – सफेद दाग में भी इसका प्रयोग होता है। जनजातीय परिवारों की महिलाएं परिवार नियोजन के लिए रीठे की बनी पिच्छु सहवास के बाद योनि मार्ग में रखती हैं।

भाषावार नाम : संस्कृत – अरिष्टक, फेनिल ; बंगला, मराठी – रिटा ; कन्नड – रेंट ; गुजराती – अरीठा ; तमिल – पानेम कोट्टी, तेलुगु – कुनकुस्न ; लैटिन – *सेपिनडुस मुकोरोसी।* ।

चिकित्सा में प्रयोग करने के लिए अधिकतर रीठा फल के छिलके तथा कुछ मात्रा में बीज को लिया जाता है।

बालों को सुन्दर, मुलायम व काले बनाने के लिए रीठे के छिलके, शिकाकाई, मेंहदी की पत्ती का चूर्ण, आवंला फल, चंदन की लकड़ी का चूर्ण इन सबको एक साथ मिलाकर एक रात भीगने के लिए छोड़ देते हैं फिर दूसरे दिन इसको उबालकर छानकर, उस पानी से बालों को धोया जाता है। इस तरह के या इसमें कुछ अन्य द्रव्यों को मिलाकर उसको विभिन्न नामों से बाजार

शेष पृष्ठ ४५ पर

नव जीवनदायी रसायन

पुनर्नवा

वैद्य मायाराम उनियाल, दिल्ली

एक लम्बे समय से भारतीय वनस्पतियां भिन्न-भिन्न रोगों में घरेलू औषधीय रूप में प्रयोग की जाती रही हैं। परम्परागत चिकित्सा में एकौषधि का प्रचलन आज भी दादी मां के नुस्खे में एवं स्थानीय वैद्यों में प्रचलित है। हमारी जनता का एक बहुत बड़ा भाग इस पद्धति से लाभ उठा रहा है। आयुर्वेद चिकित्सा में पुनर्नवा एक प्रसिद्ध औषध द्रव्य है। इस वनस्पति के पत्र का उपयोग शाकों के रूप में एवं मूल तथा पंचांग का उपयोग – शोथ, कामला, पाण्डु एवं नेत्र विकारों में औषधि के रूप में किया जाता है। यह मूत्रल होने से शोथहर है। पुनर्नवा के शाब्दिक अर्थ से स्पष्ट है कि इसके सेवन करने से शरीर नया होता है, यथा– *पुनर्नवा नित्यनवं करोति।* इस वनस्पति का सामान्य परिचय एवं उपयोग निम्न प्रकार से है :–

भाषावार नाम: संस्कृत – पुनर्नवा; हिन्दी – गदहपूरना, विषखपरा; लैटिन – *बोहराविया डिफ्यूजा।*

परिचय

वर्षाकाल में यह बूटी विशेष रूप से भूमि पर फैलती है। इसलिए इसे वर्षाभू भी कहते हैं। मूत्रल एवं शोथ (सूजन) नाशक होने से इस बूटी को शोथघ्नी भी कहते हैं। यह वनस्पति सर्वत्र भारत में उष्ण प्रदेशों की रेतीली एवं ऊसर भूमि में पाई जाती है। बहुवर्षायु मूल से काण्ड अंकुरित होकर यह वनस्पति फैलती है। तना रक्ताभ, पत्र आमने सामने, प्रत्येक पर्व की पत्तियां छोटी–बड़ी मांसल होती हैं। पुष्प छोटे, गुलाबी रंग के गुच्छों में खिलते हैं।

जड़ : मांसल, श्वेताभ वर्ण की होती है।

प्रयोज्यांग : मूल, पत्र, काण्ड। श्वेत एवं रक्त भेद से पुनर्नवा की दो किस्में मुख्य हैं।

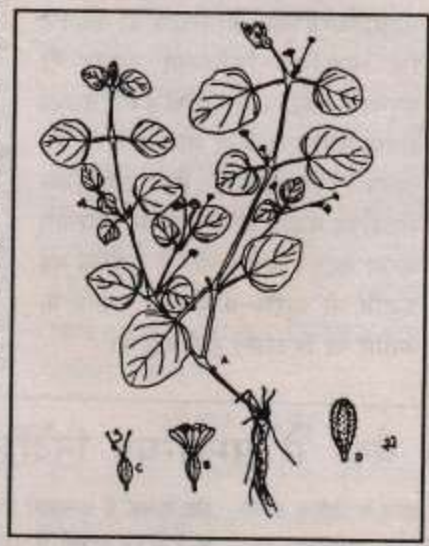

औषधीय गुण

गुण : लघु एवं रूक्ष।

रस : मधुर, तिक्त, कषाय, विपाक–मधुर

वीर्य (तासीर) : गरम

• इसके पत्रशाक का प्रयोग शोथ एवं पाण्डु में और मूल का प्रयोग शोथ, कामला तथा नेत्र विकारों में मुख्य रूप से किया जाता है।

• पाण्डु एवं कामला रोग में पुनर्नवामूल चूर्ण दिन में ३ से ४ ग्राम की मात्रा में शीतलजल के साथ खिलाने से लाभ करता है।

• सूजन में पत्र शाक का सेवन करने से सूजन कम होती है तथा पेशाब अधिक मात्रा में होने से भी शोथ कम होता है।

• पुनर्नवामूल के प्रयोग से हृदय की संकोचन क्रिया बढ़ती है।

• रक्तप्रदर एवं नेत्रविकारों में मुख्य रूप से प्रयोग किया जाता है।

• वृक्कशोथ एवं यकृतप्लीहा के रोगों में यह गुणकारी सिद्ध हुआ है।

• जलोदर एवं पैर की सूजन कम करने के लिए कुटकी, चिरायता एवं सोंठ को इसके साथ समान भाग में प्रयोग करने से अच्छा लाभ मिलता है। मात्रा – २ से ३ ग्राम शीतल जल से दिन में तीन बार।

• कफ युक्त श्वास में तथा श्वास नलिका शोथ में सोंठ एवं वच के साथ समान मात्रा में २ से ३ ग्राम चूर्ण का सेवन से कफ निकलता है।

• नेत्र विकारों में इसकी ताजा जड़ मधु में घिस कर अंजन करने से लाभ होता है।

• वृश्चिकदंश, सर्पदंश, मूषिक विष आदि में इसके मूल का आभ्यन्तरिक एवं बाह्य प्रयोग लाभ करता है।

पुस्तक समीक्षा

नैचुरोपैथी

लेखक	*बी. एम. कुलकर्णी*
प्रकाशक	*श्री सतगुरू पब्लिकेशन्स, दिल्ली, भारत*
पृष्ठ	३०४
मूल्य	*रुपये १२०.००*
द्वितीय संस्करण	*दिल्ली १९८६*

अपनी इस पुस्तक में लेखक ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि प्राकृतिक चिकित्सा ही सर्वोत्तम चिकित्सा है। चिकित्सा पद्धतियों के उद्‌गम से पूर्व मनुष्य प्रकृति के ही उपादानों से अपने रोगों की चिकित्सा किया करता था। मनुष्य का शरीर पाँचभौतिक है अतः उसे यदि कोई रोग होता है तो इन्हीं पाँचमहाभूतों द्वारा ही उसकी समुचित चिकित्सा हो सकती है।

अपनी इस पुस्तक में लेखक ने बारह अध्यायों में प्रकृति, नैचुरोपैथी बनाम औषधि योजना, मनुष्य शरीर, मानव जीवन के मूलतत्व, प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त, मानसिक चिकित्सा, विद्युत – चुम्बक आदि से चिकित्सा, मैसमैरीज्म एवं वशीकरण, प्राणायाम एवं योगासन, मालिश आदि विभिन्न विषयों पर जानकारी दी है। पुस्तक में लेखक ने नैचुरोपैथी के समर्थन में पाश्चात्य विद्वानों के कथनों के अनेक उद्धरण देते हुए अपना मत सिद्ध करने का प्रयास किया है।

अध्याय –२ में लेखक ने औषधि योजना, टीका और आधुनिक चिकित्सा पद्धति पर करारा व्यंग्य किया है। लेखक का कथन है कि आधुनिक चिकित्सा पद्धति ही मनुष्य के कष्टों के लिए दोषी है और उसका सर्वथा परित्याग किया जाना चाहिए। यह कथन विवादास्पद है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति का इस प्रकार परित्याग करना कदापि सम्भव नहीं है क्योंकि यह पद्धति भी कारण–कार्य तथा प्रयोगों के आधार पर विकसित होती रही है।

आधुनिक चिकित्सा पद्धति के विरोध में कतिपय श्लोक भी लेखक ने उद्धत किये हैं यथा :

वैद्यराज नमस्तुभ्यं यमराजसहोदर।
यमस्तु हरति प्राणात्म–त्वंच प्राणाम् घनानिच।

इस प्रकार के श्लोक केवल व्यंग्यात्मक और मजाक के तौर पर किये जाते हैं। लेखक का इनको अपने समर्थन में उद्धृत करने का कोई औचित्य नहीं है।

लेखक ने इस पुस्तक में अपनी दिनचर्या का भी वर्णन किया है, परन्तु ऐसी दिनचर्या आजकल के इस जगत में सामान्य मनुष्य के लिए यदि असम्भव नहीं, बहुत कठिन तो है ही। यद्यपि यह पुस्तक नैचुरोपैथी के सिद्धान्तों का सर्वांगीण संग्रह नहीं है तथापि उपर्युक्त कुछ बातों को अगर छोड़ दिया जाए तो पुस्तक में प्राकृतिक चिकित्सा के बारे में जो जानकारी दी गयी है वह सामान्य मनुष्य के लिए उपयोगी हो सकेगी।

प्रमुख वैद्यों से सम्बन्धित निर्देशिका

हम, लोक स्वास्थ्य परंपरा संवर्धन समिति, पूरे भारत के विभिन्न राज्यों में कार्यरत प्रमुख वैद्यों, सिद्ध वैद्य, हकीम, होम्योपैथ चिकित्सक तथा पारम्परिक लोक चिकित्सक से संबधित एक निर्देशिका बना रहे हैं। यह निर्देशिका हमारे पाठकों के लिए काफी लाभदायक सिद्ध हो सकेगी, क्योंकि इसकी सहायता से पाठक आवश्यकता पड़ने पर उन वैद्यों के कार्य क्षेत्र के बारे में जानकारी हासिल कर, उनसे संपर्क व सलाह ले सकेंगे। इस कार्य में हम पाठकों से सहयोग चाहेंगे कि वे हमको अपने क्षेत्र में कार्य कर रहे वैद्यों के नाम, पते व उनके कार्य करने का विषय आदि एक पोस्ट कार्ड पर लिख कर निम्न प्रारूप बनाकर भेजें :–

१. अपना नाम व पता तथा जीवनीय का सदस्यता क्रमांक (नं.)
२. नाम पता शिक्षा वैद्य/पारंपरिक चिकित्सक के कार्य क्षेत्र का नाम (विशेषता)

कृपया उन्हीं के नाम हमको भेजें, जिनके अनुभव का आपने या आपके परिवार के सदस्य अथवा मित्र ने, चिकित्सा कराकर लाभ उठाया हो। इस तरह की मदद से अन्य कई व्यक्ति भी इसका लाभ ले सकते हैं।

यदि आप हमें पांच वैद्यों के नाम व पते उपलब्ध कराएंगे तो हम आपको **उपहार में एक आकर्षक तुलसी का रंगीन पोस्टर भेंट करेंगे।**

पता : जीवनीय,
ई–III/२५९, सेक्टर–एच,
अलीगंज, लखनऊ २२६०२० उ.प्र.

हींग

एक उपयोगी घरेलू औषधि

वैद्य संगीता जैन, नागपुर

प्राचीनकाल से ही हींग भारतीय रसोईघरों की एक अनिवार्य वस्तु रही है। गृहिणियाँ इसे भोजन के स्वाद को बढ़ाने के लिये अनेक प्रकार से उपयोग में लाती हैं। कभी दाल और सब्जी के छौंक में, तो कभी अचार, पापड़, चकली आदि में। लेकिन हींग केवल स्वादवर्धक ही नहीं, अपितु स्वास्थ्यवर्धक भी है। यह अनेक प्रकार के पेट संबंधी रोगों को दूर करने के लिये तो रामबाण है ही, अनेक वात-व्याधियों, मानस व्याधियों, कृमिरोग आदि में भी आभ्यंतर तथा बाह्य प्रयोगों के लिये उपयोग में लायी जाती है। शताब्दियों से हमारी दादी-नानी घरेलू इलाज में इसका प्रयोग कर गौरवान्वित होती रही हैं। बच्चा पेट-दर्द की वजह से रो रहा है तो कहीं भागने-दौड़ने की जरूरत नहीं। हींग घर में है ही, पानी में घिसकर उसका लेप पेट में लगा दिया और बच्चा चुप हो गया। कितना आसान है ये दादी माँ का नुस्खा । न रुपये खर्च हुये और न ही डाक्टर के चक्कर लगाने पड़े। सुप्रसिद्ध योग हिंग्वष्टक-चूर्ण का एक प्रमुख घटक द्रव्य हींग है, इसके नाम पर ही इस योग का नाम रखा गया। यह चूर्ण भी अक्सर उदर-विकारों के लिये उपयोग में लाया जाता है।

प्राप्ति

हींग एक वृक्ष का निर्यास है। इस वृक्ष की ऊँचाई लगभग आठ फीट की होती है। इसके मूल के ऊपर वाले भाग में चाकू से छाल छील दी जाती है, वहाँ जो निर्यास निकलता है, उसे सावधानीपूर्वक संग्रहीत कर लेते हैं। बाजार में दो प्रकार की हींग मिलती है, एक

• हीरा हींग, जोकि शुभ्र और सुगन्धित होती है। यही उत्तम होती है। इसलिये आभ्यंन्तर प्रयोग के लिये इसका ही उपयोग करना चाहिये। दूसरा प्रकार है हींगडा – यह कृष्ण वर्ण की दुर्गन्धित होती है। बाह्य प्रयोग के लिये इसका उपयोग करना चाहिये। बाजार में मिलने वाली हींग में अनेक प्रकार की अशुद्धियाँ पायी जाती हैं। इसलिये इसके आभ्यंतर प्रयोग के पूर्व इसे शुद्ध करना आवश्यक होता है।

शोधन विधि

हींग को आठ गुने जल में घोलकर एक स्वच्छ वस्त्र से छान लेना चाहिये।फिर पानी को सुखाने के लिये एक बर्तन में रखकर मंद आँच में सुखाना चाहिए। गोघृत में हल्की आँच में भून कर भी हींग को शुद्ध किया जाता है।

भाषावार नाम : संस्कृत – हिंगु, रामठ; हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगाली – हींग; तमिल – इंगुवा, अंग्रेजी– आसाफोटिडा लैटिन – *फेरुला नार्थेक्स बोइस ।*

औषधीय गुण

हींग लघु, स्निग्ध और तीक्ष्ण होती है। इसका रस कटु, विपाक-कटु और वीर्य-उष्ण होता है। इसमें एक विशेष प्रकार की तीखी गंध होती है, जो इसकी पहचान तथा भोजन में उपयोग का मूल है। यह कफ वातशामक तथा पित्तवर्धक होती है।

औषधीय उपयोग

भारत देश में उदर संबंधी विकार सबसे अधिक पाये जाते हैं। समय से भोजन न करना, गरिष्ठ भोजन करना, तेल, मिर्च-मसालेदार पदार्थों का अधिक मात्रा में उपयोग करना, रात्रि में भरपेट भोजन करने के पश्चात तत्काल सो जाना आदि कारणों से गैस बनना, बदहजमी रहना, भूख न लगना, कब्जियत रहना, भोजन में रूचि का खत्म हो जाना, पेटदर्द जैसे लक्षण उत्पन्न होते हैं। ये विकार मूलतः पाचकाग्नि के मंद हो जाने से उत्पन्न होते हैं। उष्ण वीर्य होने से हींग पाचकाग्नि को बढ़ाती है। इन विकारों की शान्ति के लिये हींग को घी में भूनकर, जब वह शुष्क व खर हो जाये तो चुटकी भर घी में मिलाकर भोजन के प्रथम ग्रास के साथ खा लेना चाहिये। यदि कड़वापन अधिक लगे तो गुड़ मिला लेना चाहिये।

• पेट में कृमि होने पर हींग का चावल के दाने बराबर टुकड़ा लेकर उसे गुड़ में

लपेटकर पानी के साथ निगलने से पेट के कृमि मर जाते हैं।

• हींग न केवल उदर-विकार बल्कि कई प्रकार के वात-विकारों में भी लाभदायक होती है। पक्षाघात, अर्दित, सायटिका, संधिवात में इसका उपयोग किया जाता है।

• हींग तीक्ष्णगंधी होने के बावजूद निद्राजनक होती है, इसलिये हिस्टीरिया और अनेक तनाव जन्य मानस रोगों में इसका अन्य औषधियों के साथ उपयोग लाभकारी होता है।

• संधिवात, आमवात, उदरशूल, मूत्र का रुक जाना, इन रोगों में हींग को गरम पानी में घिसकर स्थानिक लेप लगाने से दर्द कम होकर रोगी राहत महसूस करता है। पसलियों के दर्द में भी हींग की पुल्टिस लाभकारी है।

• पुरानी खाँसी, दमा, फुफ्फुस-शोथ में भी यह लाभदायक होती है।

• सन्निपात ज्वर, शीत-ज्वर, विषमज्वर में यह विशेष उपयोगी है।

• सकष्ट मासिक प्रवृत्ति तथा प्रसव के बाद हींग देने से गर्भाशय शुद्ध होता है। शूल का प्रशमन हो जाता है।

• दाँत या दाढ़ के दर्द में हींग का टुकड़ा दाँत में दबाकर रखने से लाभ होता है। यदि दाढ़ में गड्ढा है तो उसमें हींग भरने से तत्काल लाभ मिलता है।

वर्षाऋतु में काल प्रभाव से वायु की वृद्धि तथा अग्निमांद्य होता है अतः इस ऋतु में हींग का प्रयोग अवश्य करना चाहिये। इसी प्रकार गरिष्ठ भोजन के साथ हींग का प्रयोग अवश्य करना चाहिये।

निषेध : तीक्ष्ण, उष्ण और पित्तवर्धक होने के कारण पित्त प्रकृति के व्यक्तियों में, पित्तजन्य विकारों में तथा यकृतजन्य रोगों में इसका प्रयोग सावधानीपूर्वक करना चाहिये।

हिंग्वष्टक चूर्ण

वैद्य वाचस्पति त्रिवेदी

हींग से बनने वाला एक प्रमुख एवं जन-सामान्य में प्रचलित योग "हिंग्वष्टक चूर्ण" है। आयुर्वेद सम्बन्धी औषधियों का तनिक भी ज्ञान रखने वाला सामान्य व्यक्ति इसके नाम एवं प्रयोग से परिचित होता है। इस चूर्ण को घर पर स्वयं बनाना अत्यन्त सरल है। इससे न केवल ये सस्ता पड़ेगा बल्कि प्रामाणिकता भी सन्देह रहित रहेगी। जैसा कि इसके नाम भर से स्पष्ट है। इसमें हींग के साथ आठ औषधियों का योग है, ये औषधियाँ - त्रिकुट, (सोंठ, काली मिर्च एवं पिप्पली), अजमोद, सैंधव (सेंधा नमक), जीरक इथ (काला जीरा एवं सफेद जीरा) समान मात्रा में लेना चाहिए उपरोक्त सात औषधियों को पृथक-पृथक चूर्ण करें तथा इच्छित समान मात्रा में मिलावें तदनन्तर हींग को शुद्ध करके महीन चूर्ण में मिला देना चाहिए। पुनः सब सम्मिलित औषधि द्रव्यों को छान लें तथा वायुरोधित शीशी में रखें। कुछ वैद्यगण सब द्रव्यों के समान मात्रा में हींग के सम्मिलित करने का मत रखते हैं। हींग को शुद्ध करने के लिए हींग को गौघृत में मन्द आँच में तवे पर भूनते हैं हींग भुनकर फूल जाती है तब तवे को ठन्डा होने दें। इसको शुद्ध हींग कहते हैं। यही शुद्ध हींग औषध प्रयोग के लिए उपयुक्त होती है अन्यथा अशुद्ध हींग वामक होती है जो उत्क्लेश उत्पन्न कर वमन (उल्टी) पैदा करती है।

हिंग्वष्टक चूर्ण का उपयोग विभिन्न प्रकार के पेट के रोगों के लिए होता है। प्रमुखतया आजकल गैस बनने से सामान्य जन पेट की बीमारियों से पीड़ित पाये जाते हैं। हिंग्वष्टक चूर्ण आध्मान, अफारा तथा गैस बनने जैसे रोगों के लिए रामबाण औषधि है। इस को गुनगुने पानी से लेना चाहिए। देशी घी के साथ हिंग्वष्टक चूर्ण सेवन करने से भूख बढ़ाता है तथा उदर शूल नाश होता है। मल के साथ आँव आना तथा मरोड़ होना आजकल की भाग-दौड़ की जिन्दगी की बड़ी कष्टकारक अवस्था है - इसके लिए हिंग्वष्टक चूर्ण २-३ ग्राम की तीन मात्रा प्रतिदिन गुनगुने पाने से खाने से आराम मिलता है।

नाश्ते आदि में फलों की चाट में ये चूर्ण छिड़क देने से उनके स्वाद में बढ़ोत्तरी के साथ-साथ अनेकों उदर रोगों से अनायास बचाव हो जाता है।

नाड़ी का शाक

वैद्य एस.ए. खान, लखनऊ

नारी या नाड़ी के शाक से अधिकांश लोग परिचित होंगे। यह सब्जी की दुकानों पर आसानी से मिल जाता है। खाने में यह बहुत स्वादिष्ट होता है। इसमें लोहा प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

भाषावार नाम : संस्कृत – नाड़िक, कालक, कालशाक; हिन्दी – नाड़ी का शाक, नारी; बंगाली – नालिव; मराठी – सण, चोंचे; गुजराती – छूछ; लैटिन – *कोरकोरस कैप्सुलरि ।*

यह तालाबों, झाबरों व पानी के भराव वाले नम स्थानों पर पाई जाती है। इसका क्षुप लता की तरह फैलता है। इसकी लम्बाई ३–४ फुट होती है। इसके पत्ते २ से ४ इंच लम्बे बाण के आकार के होते हैं आकार से पौन इंच चौड़े होते हैं। पत्तों के किनारे दन्तुर होते हैं। फूल – हल्के बैंगनी रंग के होते हैं। फल गोल होते हैं जो पाँच भागों में बँटे होते हैं। इसका तना ट्यूब की तरह भीतर से खोखला होता है। इसी कारण इसको नाड़ी कहते हैं।

"नाड़ी" शाक वर्ग की एक महत्वपूर्ण औषधि है। संहिता ग्रन्थों में, कालशाक, या चन्चु के नाम से भी इसका उल्लेख मिलता है। नाड़ी, कालशाक या चन्चु के नाम से कारकोरस वर्ग की अन्य प्रजातियाँ जैसे : कारकोरस एसाटुअन्स, सी–ओलिटोरस, और सी–ट्राइकुलेरिस भी ग्रहण की जाती हैं।

गुण : यह कफपित्त नाशक, वातकारक (वातवर्द्धक), सूजन उतारने वाला, रुचिकर, शक्तिवर्द्धक, स्मरण–शक्ति के लिये हितकर, शीत वीर्य, कषाय रस वाला और रक्त पित्त शामक, कामला नाशक होता है।

चिकित्सा में प्रयोग

- इसके पत्तों का क्वाथ देने से ज्वर का शमन होता है। पसीना अधिक आकर ज्वर उतर जाता है।
- अतिसार व अजीर्ण में लाभदायक है।
- रक्ताल्पता में इसका शाक देने से लाभ होता है।
- सफेद दाग (श्वित्र) पर इसके पत्तों का स्वरस लगाने से लाभ होता है। कम समय का सफेद दाग इससे ठीक हो जाता है। पुराने श्वित्र पर लाभ नहीं करता है।

नोट : वातज प्रकृति या वातज रोग से पीड़ित लोगों को नाड़ी के साग का प्रयोग नहीं करना चाहिए। वात प्रकोपक ऋतु (वर्षाऋतु) में तो कतई नहीं करना चाहिए। वर्षाऋतु में नाड़ी के साग का खाना निषेध किया गया है।

लेखकों के लिए

***जीवनीय** में हम प्राथमिक स्वास्थ्य, रोजमर्रा की बीमारियों व घरेलू उपायों द्वारा उनकी लाभदायक चिकित्सा की जानकारी से संबंधित लेखों को छापते हैं। अतः इस विषय पर लेखों का स्वागत है। कृपया अपने लेखों को टाइप कराकर अथवा साफ अक्षरों में हाथ से लिखकर मूल प्रति ही भेजें। लेख के साथ अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें जिस पर उचित मूल्य का टिकट लगा हो ताकि न छपने वाले लेखों को वापिस भेजा जा सकें। हम उन्हीं लेखों को छापते हैं जो हमारे संपादक मंडल द्वारा मान्य होते हैं।*

यह कोई जरूरी नहीं है कि हम सिर्फ वैद्यों हकीमों, डाक्टरों आदि के ही लेख छापें वरन हम प्रचलित स्वास्थ्य लोकोक्तियां एवं उन व्यक्तियों के भी अनुभव आमंत्रित करते हैं जिन्होंने किसी भी औषध या आहार द्रव्य का सफल प्रयोग किया हो।

– संपादक

पता : जीवनीय, ई – III/ २५०, सेक्टर –एच
अलीगंज, लखनऊ – २२६०२० (उ.प्र.)

भूताग्नि

पं. काशीनाथ गोपाल गोरे, लखनऊ

शरीर और सभी द्रव्य पंचमहाभूतों से निर्मित हैं। सभी भूतोत्पन्न वस्तुओं में जो अग्नि विद्यमान है, उसे "भूताग्नि" कहते हैं। महाभूतों की संख्या पाँच होने के कारण "भूताग्नि" भी निम्नलिखित पाँच प्रकार की होती हैं–

पार्थिवाग्नि

आप्याग्नि

आग्नेयाग्नि

वायव्याग्नि

नाभसाग्नि

जिस महाभूत से जो शरीरावयव सम्बद्ध होता है तत्सम्बन्धी भूताग्नि द्वारा उस अवयव की वृद्धि या उसके विरुद्ध भूताग्नि द्वारा उसका क्षय होता है। अतः भूताग्नि आयुर्विज्ञान में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। शरीर के उपादान अर्थात् सप्तधातु, त्रिदोष और मल सभी पंचमहाभूतों के संयोग से निर्मित हैं परन्तु सभी महाभूतों का परिमाण सभी अंगों में एक–सा नहीं होता। किसी अंग में कोई महाभूत प्रभावी होता है तो किसी अन्य अंग में कोई अन्य महाभूत। इस प्रकार प्रत्येक अवयव और इन्द्रिय किसी एक महाभूत से प्रभावित होते हैं और उस अंग में सम्बद्ध भूताग्नि वृद्धिकारक और विरोधी भूताग्नि क्षयकारक होती है।

त्रिदोषों में वात दोष, वायव्य और नाभस, पित्त दोष, आग्नेय और कफ दोष आप्य और पार्थिव अग्नियों से सम्बद्ध हैं। सप्त धातुओं में रस धातु आप्य, रक्तधातु आग्नेय और आप्य, मांस धातु पार्थिव, मेद धातु आप्य और पार्थिव, अस्थि धातु पार्थिव–वायव्य–आग्नेय तथा मज्जा धातु और शुक्र धातु आप्य हैं। उपधातुओं में भी स्तन्य आप्य वर्ग में, आर्तव आग्नेय वर्ग में और गर्भ आग्नेय–आप्य वर्ग में हैं। इन्द्रियों में श्रोत्रेन्द्रिय नाभस, त्वचा वायव्य, नेत्र आग्नेय, जिह्वा आप्य और घ्राणेन्द्रिय पार्थिव वर्ग में हैं। स्वेद, मल आप्य वर्ग में, मूत्र आग्नेय–आप्य वर्ग में और पुरीष पार्थिव वर्ग में हैं।

पंचमहाभूतों के कार्य तथा परिणाम, जो शरीर में परिलक्षित होते हैं, निम्नानुसार हैं–

पृथ्वीमहाभूत : गुरुता, स्थिरता, कठोरता और आकृति उत्पन्न करता है। *"गन्धवती पृथिवी"* इस वचन के अनुसार घ्राणेन्द्रिय और नासिका पृथ्वीतत्व के प्रभावक्षेत्र हैं। अस्थि, मांस, शिरा, स्नायु, केश, नख आदि आकृति प्रधान दोष–धातु में पृथ्वीतत्व प्रधान है। इन अंगों की पुष्टि हेतु पृथ्वीतत्वबहुल पदार्थों का सेवन आवश्यक है।

जलमहाभूत : द्रवता, मृदुता, शीतलता, स्निग्धता, उत्पन्न करता है। रसना, श्लेष्मा, रस, रक्त, मांस, मेद, शुक्र इस तत्व के प्रभाव क्षेत्र में हैं। यह मधुर–लवण रसों को उत्पन्न करता है। शरीर के समस्त तरल पदार्थों में जल–तत्व की प्रधानता होती है।

तेज महाभूत : रूप, नेत्र, नेत्र–इन्द्रिय, कान्ति, प्रकाश, ताप, पित्त तथा त्वचा, केश आदि पर रंगों की उत्पत्ति, कान्ति, अनेक प्रकार के पचन कर्म, स्फूर्ति ये तेजो महाभूत के प्रभाव क्षेत्र में हैं।

वायु महाभूत : स्पर्शज्ञान, संवेदनात्मक क्रियाएँ, प्रेरणा, धातुरचना तथा घटकों का शरीर में परिवहन, रूक्षता, शरीर की चेष्टाएँ, नाड़ी, हृदय आदि का स्पन्दन, हलकापन, पंचप्राण ये सभी वायुमहाभूत के प्रभाव में हैं।

आकाश महाभूत : लघुता, सूक्ष्मता, सच्छिद्रता उत्पन्न करना, अवयवों में विभेद (विविक्तता) रखना अर्थात् पृथक्करण, श्रोत्रेन्द्रिय, मुख विवर, फुफ्फुस तथा अन्य खोखले अंग, शब्द ये सब आकाश महाभूत के प्रभावक्षेत्र में हैं।

(क्रमशः)

यूनानी चिकित्सा के गौरव

एविसिना

हकीम साद उस्मानी, लखनऊ

अरब के बुद्धिजीवियों में एविसिना यूनानी चिकित्सा पद्धति का मुख्य प्रतिनिधि था। इस महान व्यक्ति की हजारवीं वर्ष गांठ १९८० ई. में बड़े हर्ष एवं उल्लास से मनाई गई।

अबु अली अल हुसैन इब्न सिना का जन्म एक साधारण परिवार में हुआ। एविसिना के नाम से यह व्यक्ति अधिक प्रसिद्ध है। एविसिना की माता सितारह एक ईरानी लड़की थी। ऐतिहासिक तथ्य के अनुसार एविसिना का जन्म अंफशीन के निकटवर्ती स्थान बल्ख में हुआ। यह परशिया में बुखारा के समीप एक उपनिवेश है। १९८० ई. से यह स्थान सोवियत उजबेकिस्तान के नाम से प्रसिद्ध है। रूस के निवासियों ने अपने राष्ट्र के महान वैज्ञानिक एविसिना की हजारवीं वर्षगांठ सहर्ष मनायी। इस अवसर की स्मृति में रूस ने वैज्ञानिक सम्मेलन का आयोजन भी किया।

एविसिना के कार्यों को रूसी भाषा में प्रकाशित किया गया और उसकी वर्षगांठ के अवसर पर बुखारा में एविसिना, संग्रहालय का भी आयोजन हुआ। लीबिया शासन ने भी उसकी हजारवीं वर्षगांठ की स्मृति में एक टिकट का निर्गमन किया।

एविसिना-चिकित्सा का "गौरव एवं मुखिया" था। वास्तव में इस बहुमुखी प्रतिभा वाले व्यक्ति को ईश्वर ने विस्तृत ज्ञान एवं अदभुत बुद्धिमत्ता से परिपूर्ण किया था। दस वर्ष की अवस्था में इस व्यक्ति ने सम्पूर्ण कुरान को कंठस्थ कर लिया। सोलह वर्ष की अवस्था में इसने बिभिन्न औषधियों की खोज की। अठारह वर्ष की अवस्था में एविसिना ने बुखारा के सुल्तान नूह इब्ने मन्सूर को एक असाध्य बीमारी से मुक्त कर उस युग के समस्त चिकित्सकों को दंग कर दिया। एविसिना की इस सफलता के पश्चात शाही पुस्तकालय के द्वार उसके लिए खोल दिये गये। एविसिना के अनुसार यह पुस्तकालय अनेक कक्षा में विभक्त था तथा प्रत्येक कक्षा में भाषा, काव्य कला, विधिशास्त्र आदि विषयों पर उपयुक्त पुस्तकें सुलभ थी। उसने यूनान के प्राचीन वैज्ञानिकों का भिन्न-भिन्न पुस्तकों से अध्ययन किया। अठारह वर्ष की अवस्था में एविसिना ने समस्त विज्ञान शास्त्र का अध्ययन समाप्त कर लिया। इक्कीस वर्ष की आयु में उसने अपने अद्वितीय ज्ञान का विभिन्न पुस्तकों में प्रदर्शन किया तथा तीन वर्ष व्यतीत होने के पूर्व ही एविसिना इन्साइक्लोपीडिया के इक्कीस ग्रन्थ पूर्ण कर चुका था।

इस महान चिकित्सक ने विज्ञान धर्म एवं अरबी संगीत के विभिन्न विषयों पर भी विस्तृत रूप से लेखनी चलायी। यूनानी पद्धति को प्रदान की गयी उसकी अद्वितीय सेवा एवं मुख्य कार्य उसकी पुस्तक "अल" कानून फिल तिब अथवा दी कैनन आफ मेडिसन थी जो यूरोप के विश्व-विद्यालयों में पाठ्य पुस्तक के रूप में छः शताब्दियों से अधिक दिनों तक मान्य रही। इसमें अरबी दवा, प्राचीन यूनानी चिकित्सक तथा चिकित्सीय क्षेत्र में उसकी खोज एवं रोकथाम और इलाज आदि उल्लिखित है। चिकित्सा की यह पुस्तक आज भी यूनानी औषधि के क्षेत्र में अपना सर्वोच्च स्थान रखती है। एविसिना की चिकित्सा विधि, पाँच ग्रन्थों में विभक्त है। इनमें एक में अस्थि भंग की चिकित्सा का उल्लेख है। इस ग्रन्थ में अस्थि भंग एवं शल्य विद्या का विस्तृत ज्ञान उपलब्ध है जबकि उन दिनों शल्य विद्या चिकित्सा ज्ञान से अधिक व्यवसाय के रूप में प्रसिद्ध थी। उसने घाव के उपचार में शराब के प्रयोग का अनुमोदन किया तथा गान विद्या द्वारा

शेष पृष्ठ ५० पर

शोध पत्र

पीलिया रोग में देसी दवाओं का प्रभाव

यूनानी चिकित्सा शास्त्र में पीलिया रोग के लक्षणों का "यरकान-ए-काबादी" नामक रोग से इब्ने सीना ने दसवीं सदी में वर्णन किया है। इस शास्त्र के प्राचीन विद्वानों के मतानुसार "यरकान-ए-काबादी" रोग संक्रमण के कारण पैदा होता है। अतः यह मानना गलत है कि विषाणु के संक्रमण से होने वाली बीमारियों की जानकारी वर्तमान समय की देन है।

आधुनिक विज्ञान में पीलिया रोग का कोई स्थाई इलाज नहीं है परन्तु देशी चिकित्सा पद्धतियों (आयुर्वेद, यूनानी, सिद्ध) में इस रोग में लाभ पहुँचाने वाली अनेक वनौषधियों का वर्णन है। इन बातों को आधुनिक विज्ञान के मत से प्रमाणित करने से इन चिकित्सा पद्धतियों का प्रचार-प्रसार आधुनिक समाज में और अधिक हो सकता है।

अतः इस बात की आवश्यकता है कि इन चिकित्सा पद्धतियों में पीलिया रोग के उपचार में लाभकारी बताई गई इन वनौषधियों की आधुनिक आधार पर जाँच की जाए। इस सिद्धान्त को ध्यान में रखकर पीलिया रोग में लाभकारी कुछ यूनानी वनौषधियों पर आधुनिक परीक्षण और इनके कार्य करने की वैज्ञानिक प्रमाणिकता जाँचने के लिए इन वनौषधियों में से कुछ को चुनकर "हीपा-गेस्ट" नामक आयुर्वेदिक दवा और एक अन्य यूनानी दवा जिसका नाम (कोड) "जे-१" रखा गया, इन दवाओं को फिर पीलिया के रोगियों पर देकर उनकी गुणवत्ता देखी गई।

"हीपा-गेस्ट" नामक दवा में जो वनौषधियाँ डाली गईं उनके नाम कुछ इस प्रकार हैं –

भृंगराज : *एक्लेप्टा एलवा*

कडू: *स्वेरशिया डेकूसेटा*

कालमेघ : *एंड्रोग्रैफिस पेनीकूलेटा*

गुडूची: *टाइनोस्पोरा कार्डिफोलिया*

हरड़ : *टरमिनेलिया चेबुला*

इस दवा परीक्षण के लिए केवल १०० पीलिया (वायरल हेपेटाइटिस) के रोगियों को लिया गया। इन रोगियों की आयु १०-५० वर्ष के बीच की थी। इन रोगियों पर दोनों दवाओं के अध्ययन के लिए उन्हें ५०-५० सदस्यों के दो वर्गों में बाँट दिया गया।

प्रथम वर्ग के रोगियों को "हीपा-गेस्ट" दवा की २ गोलियाँ (प्रत्येक ५०० मि.ग्रा. की मात्रा) दिन में तीन बार तथा द्वितीय वर्ग के रोगियों को "जे-१" दवा (जो पीने के लिए थी) २० मि.ली. की मात्रा में दिन में तीन बार दी गई।

दवा देने से पहले इन रोगियों के यकृत कार्य क्षमता के सम्बन्धित खून की जाँच कर ली गई थी तथा दवा देने के बाद प्रत्येक रोगी की चौथे दिन चिकित्सकीय तथा दसवें दिन प्रयोगशालीय जाँच की जाती थी। परिणामस्वरूप १०० रोगियों में से प्रथम वर्ग के ४४ रोगियों तथा द्वितीय वर्ग के ३८ रोगियों का मूल्यांकन (प्रभाव) देखने को मिला। कुल २६ रोगियों (प्रथम वर्ग के १२ तथा द्वितीय वर्ग के १४) में पीलिया रोग को साबित करने वाला एच.बी.एस.ए.जी. नामक रक्त परीक्षण सकारात्मक (पॉजिटिव) था।

इस परीक्षण से यह निष्कर्ष निकला कि दोनों प्रकार की दवायें पीलिया रोग में लाभकारी थी किन्तु प्रथम वर्ग के रोगियों की अपेक्षा द्वितीय वर्ग के रोगियों को दवा ने ज्यादा लाभ पहुँचाया। जिन रोगियों में एच.बी.एस.ए.जी. रक्त परीक्षण सकारात्मक (पॉजिटिव) था उनमें दवा लेने के ६-८ सप्ताह बाद वही रक्त परीक्षण नकारात्मक (निगेटिव) निकला। इससे पता चलता है कि ये रोगी दवा लेने से पूर्णतः लाभान्वित हुए।

विमर्श : इस अनुसन्धानात्मक प्रयोग से यह पता चलता है कि दोनों प्रकार की दवाएँ पीलिया रोग में लाभकारी हैं किन्तु "हीपा-गेस्ट" दवा की तुलना में "जे-१" नामक यूनानी दवा ज्यादा कार्यकारी थी विशेषतः उन रोगियों में जिनका रक्त परीक्षण एच.बी.एस.ए.जी. सकारात्मक (पॉजिटिव) था।

हकीम एम.एम. रहीम रफीक,
हकीम सी.एम. हबीबुल्लाह एवं
श्रीमती बसीरा खातून, हैदराबाद

कैंसर की आयुर्वेदिक दवा?

वैद्य एस.एम. अतीक, लखनऊ

यह सच है कि कैंसर लाइलाज है या यूँ कहें कि अधिकांश तरह के कैंसर के मरीजों की मृत्यु इलाज द्वारा अधिक से अधिक कुछ और समय तक ही टाली जा सकती है। ऐसी ही कुछ मान्यता आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की है जिसके अनुसार कुछ गिने-चुने प्रकार के ही कैंसर का जल्दी पता लग जाने पर शल्य तथा औषधीय उपचार से पूरी तरह इलाज सम्भव है। मैंने कुछ महात्माओं से प्राप्त जानकारी पर और अध्ययन करके आयुर्वेदिक चिकित्सा पर आधारित कुछ जड़ी-बूटियों से ऐसी दवा तैयार की है जिसका पिछले ४-५ वर्षों में २५-३० मरीजों पर प्रयोग करने पर निश्चित सफलता मिली है। साथ ही एक राष्ट्रीय प्रयोगशाला में इस औषधि के सम्भावित कुप्रभावों पर किए गए अध्ययन से पता चला कि औषधि के ६ से ८ सप्ताह तक चूहों को खिलाने पर उन पर कोई कुप्रभाव नहीं हुआ वरन् उनका भार बाकी चूहों की अपेक्षा बढ़ा।

यद्यपि सभी मरीजों के निदान एवं परीक्षणों के सारे कागजात मैं नियमित रूप से नहीं रख सका हूँ पर करीब एक दर्जन से अधिक ऐसे मरीजों का विवरण मैं यहाँ दे रहा हूँ जिनकी विस्तृत जाँच के बाद आधुनिक चिकित्सकों ने निश्चित रूप से कैंसर की पुष्टि की थी। इनमें से अधिकांश मरीजों को उनके आधुनिक चिकित्सकों ने कुछ सप्ताह से कुछ माह का ही अभयदान दे सकने की पुष्टि की थी। इनमें से अधिकांश को कुछ सप्ताहों में ही निश्चित लाभ मिला और सभी ने कुछ माह के उपचार के बाद औषधि लेना बन्द करने के बाद भी सामान्य जीवन बिताया है। एक रोगी की मृत्यु ६२ वर्ष की आयु में दिल की धड़कन रुक जाने से हुई और एक अन्य की मृत्यु दुर्घटना में हुई है। शेष सभी १० मरीज अभी भी स्वस्थ हैं। इन सभी मरीजों को विवरण नीचे तालिका में दिया है। परन्तु व्यक्तिगत स्तर पर इस औषधि का व्यापक परीक्षण व प्रचार-प्रसार करना मेरे लिए सम्भव नहीं है। यद्यपि मैंने सरकार को सभी स्तरों पर इसके लिये लिखा है पर कहीं कोई स्पष्ट रुचि नहीं ले रहा है अलबत्ता सभी अधिकारी दवा का फार्मूला अवश्य जानना चाहते हैं। जब तक औषधि की गोपनीयता व अधिकारों की स्पष्टता न हो, मुझसे ऐसी अपेक्षा क्यों की जाती है।

कुछ रोगियों के नाम, पते व उनके औषधीय प्रयोग का विवरण इस प्रकार हैं -

रोगी का नाम व पता	औषधीय प्रयोग व उसके परिणाम
१. डॉ. एस.एम. कौल की माताजी।, जीव-रसायन विभाग, सी.डी.आर.आई., लखनऊ	गर्भाशय के कैंसर की मरीज, जिन्हें ८ माह के प्रयोग से काफी लाभ हुआ। मरीज की मृत्यु हृदयगति रुकने से हुई।
२. श्री विपुल शर्मा, ई-३१६६, राजाजीपुरम्, लखनऊ	रक्त कैंसर का रोगी जिसकी जाँच टाटा मेमोरियल कैंसर अस्पताल बम्बई में भी हुई है ६ माह के उपचार से अभी भी स्वस्थ है।
३. श्रीमती मधु चन्द्रा, पत्नी डॉ चन्द्रा, प्रवक्ता क्रिश्चियन कॉलेज, लखनऊ	रक्त कैंसर की मरीज जिनकी बाद में हृदयगति रुकने से मृत्यु हुई।
४. श्री शब्बीर, इलेक्ट्रीशियन, तीसरी गली, निशातगंज, लखनऊ	रक्त कैंसर का रोगी जो २२-७-९० से उपचार से अभी भी स्वस्थ है।
५. श्रीमती शाहीन, ४५३/१०५/७, अहमदगंज, मुसाहिबगंज, लखनऊ	गले का कैंसर, जिसके कारण कुछ भी खाने-पीने में विशेष कष्ट था। नवम्बर १९९० से इलाज के बाद काफी स्वस्थ।
६. श्री ए.के. श्रीवास्तव, १२३ रकाबगंज कदीम, लखनऊ	लिम्फ ग्रन्थि का कैंसर जो फैल गया था। जून ८९ से इलाज। अभी रोगी स्वस्थ है।
७. श्रीमती सईदा खातून, २८३/२०३, हरचंदपुर, गढ़ीकिनौरा, लखनऊ	स्तन कैंसर की रोगी। सितम्बर ९० से इलाज। अभी भी स्वस्थ।
८. श्रीमती जगरानी, १७/१३६, दुरविजयगंज, रानीगंज, लखनऊ	पेट का कैंसर जो यकृत पर असर कर चुका था। सितम्बर ९० से इलाज। अभी भी स्वस्थ।

शेष पृष्ठ ५१ पर

पूर्वांक से आगे

आहार और हमारा स्वास्थ्य

वैद्य पूर्णचन्द्र जैन, लखनऊ

आहार की विवेचना में बताया जा चुका है कि आहार का ज्ञान और उसका महत्व उसमें विद्यमान तत्वों के द्वारा होता है। आहार के कार्यों का ज्ञान उसमें विद्यमान गुणधर्म एवं विशिष्ट द्रव्यों के द्वारा होता है। इसी प्रकार औषधि द्रव्यों के कार्यों का भी ज्ञान होता है। आयुर्वेद के अनुसार उपयुक्त आहार पाँचभौतिक एवं षडरस युक्त होना चाहिये तभी दोष धातु–मलों का पोषण एवं आवश्यक ऊर्जा की उत्पत्ति हो कर शरीर स्थिर एवं संतुलित रहता है।

संतुलित आहार

उस आहार को कहा जाता है जो पांचभौतिक हो, छः रसों से युक्त हो, शरीर की वृद्धि एवं क्षतिपूर्ति करता हो और दोषधातु मलों का पोषण करता हो। वात पित्त कफ : त्रिदोष को सम रखता हो, शरीर को क्रियाशील रखता हो, सामान्य कार्यों को करने के लिए आवश्यक ऊर्जा प्रदान करता हो और शरीर को स्वस्थ रखता हो।

गुणानुसार आहार

आहार द्रव्यों के गुणों की विविधता से ही उनके कार्यों में भी विविधरूपता देखी जाती है। मूँग एवं उड़द की दाल पार्थिव द्रव्य हैं तथापि मूँग दाल में लघुगुण के कारण वह शीघ्र पचित होती है जबकि उड़द दाल गुरुगुण के कारण पचने में कठिन होती है। आयुर्वेद के महर्षियों ने द्रव्यों में पाये जाने वाले गुणों को शारीर, चिकित्स्य अथवा कर्मण्य गुण कहा है और इनकी संख्या २० कही है। ये गुण निम्न हैं– १ गुरु, २ लघु, ३ मन्द, ४ तीक्ष्ण, ५ शीत, ६ उष्ण, ७ स्निग्ध, ८ रूक्ष, ९ सूक्ष्म, १० स्थूल, ११ श्लक्ष्ण, १२ खर, १३ सान्द्र, १४ द्रव, १५ मृदु, १६ कठिन, १७ स्थिर, १८ सर, १९ विशद, २० पिच्छिल।

गुरु गुण : यह गुण द्रव्यों में पृथ्वी और अपमहाभूत से आता है इस कारण अधोगामी होता है। गुरुगुण युक्त आहार द्रव्यों के परमाणुओं का संगठन संश्लिष्ट होता है इससे वे द्रव्य पचने में भारी होते हैं तथा देर से पचते हैं। इन द्रव्यों के सेवन से शरीर में भारीपन महसूस होता है और वे शरीर की पुष्टि शरीर में जड़ता, आलस्य पैदा करते हैं। ये द्रव्य कफ दोष की वृद्धि करते हैं। इन द्रव्यों में विभिन्न मांस, मछली, गेहूँ, लोबिया, माष, राजमा, घी, बादाम, दूध, खजूर, लहसुन, प्याज, केला इत्यादि आते हैं। इन द्रव्यों से वात दोष का क्षय होता है।

लघु गुण : यह गुण आकाश, अग्नि एवं वायु महाभूतों से आता है। इसके द्रव्य ऊर्ध्वगामी होते हैं। इन द्रव्यों के सेवन से शरीर दुबला एवं हल्का होता है। इन द्रव्यों का पचन शीघ्र होता है और ये शरीर में स्फूर्ति, उत्साह उत्पन्न करते हैं। ये द्रव्य व्रणरोपक, शोषक, कफनाशक एवं वातवर्द्धक होते हैं। इन द्रव्यों में मूँग, साठीचावल, लाजा, कोदों, बाजरा, मक्का, तीतर, बटेर एवं मृगमांस, पेठा, बकरी का दूध, मक्खन, मधु आदि आते हैं।

शीत गुण : यह गुण अप और वायु महाभूतों से आता है। ये द्रव्य मूर्च्छा, पिपासा, ज्वर, दाह, स्वेद को शान्त करते हैं, शरीर को प्रसन्नता देने वाले, विभिन्न स्रावों को पतला, मल को कम करने वाले तथा शरीर में जकड़ाहट पैदा करने वाले होते हैं। इन द्रव्यों में विभिन्न पानक, शीतलपेय, शर्बत, दधि, दूध, शालिचावल, गेहूँ, मूँग, सेब, चिरौंजी, जामुन, कैथा, बिल्व, ककड़ी, खीरा, अंगूर आदि आते हैं।

उष्ण गुण : यह गुण अग्निमहाभूत से आता है। ये द्रव्य शरीर में दाह, पिपासा, मूर्च्छा एवं स्वेद उत्पन्न करने वाले पित्तवर्द्धक, वात–कफ शामक, एवं पाचक स्रावों को प्रवृत्त करने वाले होते हैं। इन द्रव्यों में मुर्गा, मछली एवं जलचर प्राणियों के मांस, कुलथी, तिल, सरसों, इनके तेल विभिन्न मद्य, कुधान्य, माष, लहसुन, अनार, सेमबीज आदि आते हैं।

स्निग्ध गुण : यह गुण अपमहाभूत से आता है। स्निग्ध गुणयुक्त द्रव्य शरीर में बल एवं वर्ण की वृद्धि करते हैं, उसे मृदु एवं स्निग्ध बनाते हैं, शरीर को आर्द रखते हैं तथा शुक्र को बढ़ाने का कार्य करते हैं। ये द्रव्य वात का शमन करते हैं और कफ की वृद्धि करते हैं। इन द्रव्यों में घृत, तेल, बादाम, अखरोट, शालिचावल, माष, गोदुग्ध, दधि, गेहूँ,

तिल, मुर्गा, मछली, बकरा एवं सुअर का मांस, केला, अनार, बेल एवं समुद्री मत्स्य आते हैं।

रूक्ष गुण : यह गुण पृथिवी, वायु एवं अग्निमहाभूतों से आता है। इन द्रव्यों के सेवन से शरीर में रूखापन, खुरदरापन, कठोरता आती है तथा ये द्रव्य बल, वर्ण का नाश करते हैं, स्तंभन करते हैं तथा वात की वृद्धि के साथ कफ नाशक हैं। इन द्रव्यों में चना, जौ, लोबिया, मोठ, मसूर, खेसारी, अरहर, मटर, चौलाई, पत्तेवाली सब्जियाँ सरसों, कुधान्य, मधु, सत्तू आदि आते हैं।

मन्द गुण : यह गुण पृथिवी एवं अपमहाभूत से आता है। मन्द गुण युक्त द्रव्य देर से पचने वाले, देर से क्रियाकर अधिक समय तक कार्य करने वाले तथा शरीर को शिथिल करने वाले होते हैं। ये द्रव्य कफवर्द्धक होते हैं। अधिकांश गुरुद्रव्य तथा वे द्रव्य जिनपर आवरण होता है क्रिया में मन्द होते हैं। मन्दता द्रव्यों के जल में घुलनशील शक्ति पर निर्भर करती है।

तीक्ष्ण गुण : यह गुण अग्निमहाभूत के कारण आता है। तीक्ष्ण गुण युक्त द्रव्य शरीर का शोधन करने वाले, स्रावों को बहाने वाले, पाक करने वाले, पित्तवर्द्धक एवं कफ-शामक हैं। इस वर्ग में विभिन्न लवण, उग्रक्षार एवं अम्ल द्रव्य आते हैं।

मृदु गुण : यह गुण आकाश एवं अपमहाभूत से प्राप्त होता है। मृदु गुण युक्त द्रव्य शरीर को मुलायम एवं ढीला रखते हैं, शरीर के स्रावों को कम करने वाले, दाह एवं पाक को कम करने वाले तथा कफवर्द्धक और पित्तशामक होते हैं। इन द्रव्यों में दुग्ध, मक्खन, घी एवं मधु आदि आते हैं।

कठिन गुण : यह गुण पृथिवी महाभूत से द्रव्यों में आता है। कठिन गुण युक्त द्रव्य दाह नाशक, स्राव शोषक, अस्थियों एवं अन्य संघात द्रव्यों को दृढ़ता प्रदान करने वाले तथा वात वर्द्धक हैं। इस वर्ग में कैल्शियम, मैग्नीशियम आदि के लवण तथा कुछ प्रोटीन द्रव्य आते हैं।

स्थिर गुण : यह गुण भी पृथिवी महाभूत से प्राप्त होता है। स्थिर गुण युक्त द्रव्य धारण एवं स्तम्भन का कार्य करते हैं। वात, मल, मूत्र, स्वेद एवं अन्य स्रावों को स्तम्भित करने वाले तथा कफवर्द्धक हैं। इनमें विभिन्न मांस, जौ, प्याज, बेल, आलू, धातु युक्त लवण आदि आते हैं।

सर गुण : यह गुण अप महाभूत से प्राप्त होता है। सर गुण युक्त द्रव्य शरीर में गति उत्पन्न करते हैं। इससे वात, मूत्र, पुरीष की सम्यक् प्रवृत्ति होती है अतः सर गुण युक्त द्रव्य अनुलोमक, मल एवं वात प्रवर्तक कहलाते हैं। ये द्रव्य कफवर्द्धक होने के साथ ही पित्तघ्न हैं और पाचन प्रणाली में गति के प्रेरक होते हैं। ऐसे द्रव्यों में शाक, भाजी, चोकर एवं सेलुलोज युक्त द्रव्य तथा आन्त्र में आचूषण की क्रिया से जलीयांश की वृद्धि करने वाले लवण द्रव्य सम्मिलित हैं।

विशद गुण : यह गुण आकाश एवं वायु महाभूत से प्राप्त होता है। विशद गुण युक्त द्रव्य क्लेद तथा आद्रता को नष्ट करने वाले तथा व्रण का रोपण करने वाले हैं। ये द्रव्य कफ को शान्त करते हैं और वात को बढ़ाते हैं। इन द्रव्यों में खरगोश का मांस विभिन्न क्षार द्रव्य, कषाय रस युक्त द्रव्य एवं तक्र आता है।

पिच्छिल गुण : यह गुण अपमहाभूत से प्राप्त होता है। इस गुण से युक्त द्रव्य शरीर के स्रोतों पर लेप लगाने का कार्य करते हैं। ये द्रव्य जीवनीय, बल्य, गुरु, लेसदार, अस्थि को जोड़ने वाले, कफ कारक एवं पित्त शामक होते हैं। इन द्रव्यों में विभिन्न गोंद, ईसबगोल, तिल एवं दुग्ध आदि आते हैं।

श्लक्ष्ण गुण : यह गुण अग्निमहाभूत से प्राप्त होता है। इस गुण से युक्त द्रव्यों में स्नेहांश नहीं होता। ये भी रोपण जीवन, अस्थिसंधान एवं कफवर्द्धन का कार्य करते हैं।

खर गुण : यह गुण पृथिवी और वायु महाभूतों से आता है। इस गुण से युक्त द्रव्य शरीर में लेखन का कार्य करते हैं। इससे शरीर में रूक्षता एवं खरता उत्पन्न होती है। अस्थि को खरता प्रदान करने वाले यही द्रव्य हैं।

सूक्ष्म गुण : यह गुण अग्नि, वायु एवं आकाश महाभूत से प्राप्त होता है। ये द्रव्य शीघ्र शोषित होकर सम्पूर्ण शरीर के स्रोतसों में प्रविष्ट हो जाते हैं। इस वर्ग में विभिन्न मद्य एवं अन्य नशा उत्पन्न करने वाले द्रव्य आते हैं।

स्थूल गुण : यह गुण पृथिवी महाभूत से प्राप्त होता है जिससे ये द्रव्य स्रोतसों में अवरोध उत्पन्न करते हैं। ये द्रव्य गुरु, देर से पचने वाले, कफवर्द्धक तथा मोटापा बढ़ाने वाले होते हैं। इन द्रव्यों में सभी प्रकार के मांस, गेहूँ, दही आदि आते हैं।

सान्द्र गुण : यह गुण पृथिवी महाभूत से आता है तथा शरीर का पोषण कर उसे स्थूल बनाता है। ये द्रव्य कफ वातशामक होते हैं। इस वर्ग में सभी स्निग्ध द्रव्य, मधु एवं पार्थिव द्रव्य आते हैं।

द्रव गुण : यह गुण अपमहाभूत से प्राप्त होता है। इस गुण से युक्त द्रव्य शरीर को आद्र रखते हैं। सम्पूर्ण शरीर में वे व्याप्त रहते हैं और कफ पित्तवर्द्धक हैं। इस वर्ग में जल, दुग्ध एवं इसी के समान द्रव्य आते हैं।

लंघन में उपयोगी फलाहार

वैद्य प्रमोद वासुदेव कुलकर्णी, पुणे

भारतवर्ष में अनेक कारणों के लिये उपवास किये जाते हैं। मगर इसमें खान-पान की ओर जरूरत से ज्यादा ध्यान दिया जाता है। ये उपवास लंघनरूप होने चाहिये। आयुर्वेदशास्त्र में लंघन एक चिकित्सा बतायी गयी है। जहाँ तक हो सके लंघन में खाने का सिलसिला टाल ही देना चाहिए, जिस लंघन में कुछ भी खाया नहीं जाता वह अनशनरूप लंघन है। स्वल्प लंघन में थोड़ा बहुत खाना या पीना अपेक्षित है। उसमें लघ्वन्न खाया जाय तो हजम हो जाता है, इसलिए ऐसी स्थिति में अग्निदीपक, उष्ण, लघु ऐसे गुणयुक्त पदार्थ खाने चाहिये।

लंघन की परिभाषा

शरीरलाघवकरं द्रव्यं कर्म वा लघुभोजनं उपवासो वा। (चरक)

अर्थात् जो द्रव्य शरीर को हलका बनाता है या जिस द्रव्य का कर्म शरीरमें हल्कापन लाना हो वह लंघन है। उपवास अथवा लघु (हल्का) भोजन भी लंघन है।

यद् किंचित् लाघवकरं देहे तत् लंघनं स्मृतम्। (चरक)

देह में लाघव (हल्कापन) उत्पन्न करने वाले जो द्रव्य या उपाय होते हैं उन्हें लंघन कहते हैं।

एक अन्य भेद से लंघन के दो प्रकार होते हैं।

शोधन व शमन

यदि दोषों का बल कम हो तो उपवास रूप लंघन अग्नि बढ़ानेवाला होता है।

जो रोगी बृहंणीय याने बल, मांस पुष्टि करने योग्य हो उनका रोग लंघन साध्य होने पर उस व्यक्ति को स्वस्थ लंघन देते हैं।

शोधन से लंघनीय पुरुष

जिस व्यक्ति के शरीर में कफ, पित्त, रक्त और मल अधिक मात्रा में हो तथा जिनके शरीर में कफ, पित्त, रक्त और मल वायु से युक्त हो, जिनका शरीर बड़ा हो और बलवान हो उसे संशोधन के द्वारा लंघन कराना चाहिये।

केवल वातविकारों में लंघन नहीं किया जाता है।

पाचन के द्वारा लंघनीय पुरूष

जिस पुरुष के शरीर में कफ एवं पित्त के द्वारा उत्पन्न रोग मध्यबल वाले हो, वमन अतिसार, हृदयरोग, विसूचिका, अलसक तथा ज्वर से जो मनुष्य युक्त हो और जिन्हें कब्ज का रोग हो, शरीर में गुरुता हो, डकार अधिक आती हो, जी मिचलाता हो, अरोचक आदि से पीड़ित हो तो उन व्यक्तियों को प्रायः पाचन द्वारा लंघन कराना चाहिये।

इस लंघन की जानकारी के बाद लंघन में उपयोगी फलाहार देखेंगे। अग्निमांद्य सभी रोगों का मूल कारण माना गया है। इसलिये अग्निमांद्य में लंघन का महत्व बहुत है। अग्निमांद्य तीन प्रकार से पहचाना जाता है। १. भूख न लगना २. भूख लगने पर भी खाया हुआ खाना हजम न होना ३. कभी भूख लगना कभी न लगना (विषम-अग्नि)।

१. **भूख न लगना :** इसमें ज्यादातर अन्न सेवन नहीं करना चाहिये। हल्के अन्नपदार्थ इसमें खाये जा सकते हैं जैसे पेया, यवागू आदि।

कंदमूल में लहसुन, अदरक, मूली का प्रयोग उपयोगी होता है।

२. **भूख लगने पर भी खाया हुआ खाना हजम न होना :** इसमें फलवर्ग में अनार, कपित्थ (कैथा), फालसा, सेब आदि फलों का प्रयोग करें। कंदमूल में सकरकंद, साबूदाना, चुकंदर, आलू आदि का प्रयोग युक्तिपूर्वक कराना चाहिए।

३. **विषम अग्नि** में कभी भूख अच्छी लगती है, कभी लगती नहीं। जब भूख न हो तो लंघन की आवश्यकता होती है। यदि फलाहार में कुछ खाना हो तो अनार, अंगूर, नींबू, अनन्नास, आमला, सूखी अदरक, हल्दी, मूली, प्याज, नागरमोथा का प्रयोग युक्ति से कराना चाहिये। विषम अग्नि में कभी लघ्वन्न भी पचन नहीं हो पाता है और कभी गुरु अन्न भी पच जाता है। इसी वजह से आध्मान, पेट में गड़गड़ाहट, पेटदर्द आदि तकलीफें होती हैं। विषम अग्नि में वातप्रधान्य होने से इसमें खट्टे और नमकीन रस का इस्तेमाल करना जरूरी है। विषमाग्नि में गाजर, मूली, आलू, गोभी, इनका सूप बनाकर उसमें हींग, अजवायन, धनिया और जीरा डाल के लेवें। कुछ लोगों को बिल्कुल भूख नहीं लगती उनके लिये लंघन के साथ ही साथ लहसुन शुद्ध घी में लाल तलकर खाना, अच्छा होता है। लंघन के लिए गुणानुसार निम्न फल उपयोगी होंगे :-

लघु (हल्का)	उष्ण	रूक्ष	सर	अग्निदीपक फल	रूच्य (भूख एवं रूचि उत्पन्न करने वालेफल)
कोशाम (पक्व)	आम्रातक (अपक्व)	फूट (कच्चा)			
बिल्व (कच्चा)	कोशाम (पक्व)	खीरा (अपक्व)	आम्रातक (कच्चा)	कोशाम (पक्व)	
कैथ (कच्चा)	लकुच (कच्चा)	सुपारी बड़हल	चिरौंजी	लकुच (पका)	कोशाम (पक्व)
तेंदू (कच्चा)	फूट (पका/अपक्व)	लकवी	द्राक्षा (पकी)	सुपारी	सुपारी
करमर्द (कच्चा)	तरबूज (पका)	लिसोडा (कच्चा)	इमली (पकी)	बेल (कच्चा)	करमर्द (कच्चा/पका)
फालसा	खीरा (पका)	इमली (पका)		बीजपूर	अनार
अनार	करमर्द (कच्चा)	कोकम (पका)		कागजी नींबू	द्राक्षा
नाशपती	कोकम (कच्चा)			इमली (पकी)	सेब
बीजपूर				कोकम (पका)	कागजी नींबू

सूचना

१. १९८६ ई. अथवा उसके बाद प्रकाशित आयुर्वेद तथा यूनानी–तिब्बी विषयक ग्रन्थ पाँच–पाँच प्रतियों में वर्ष (१९९१–९२) के पुरस्कार हेतु आमन्त्रित।

२. १९९० ई. के कमल कुमारी गुप्त स्मृति स्वर्णपदक हेतु "मूत्राघात" तथा १९९१ ई. के उक्त स्वर्णपदक हेतु "रसायन की उपादेयता" विषय पर न्यूनतम २५ फुलस्केप पृष्ठों में टंकित शोधपत्र चार प्रतियों में आमन्त्रित।

३. श्रीमती किशन देवी तथा जवाहरलाल नागपाल स्मृति स्वर्णपदक (१९८७) के लिए "वमे तजा वीफे अनफ (साइनसाइटिस)" तथा उक्त स्वर्णपदक १९८९ के लिए "चित्तोद्वेग की आयुर्वेदीय चिकित्सा (आयुर्वेदिक ऐप्रोच इन ऐंग्जाइटी न्यूरोसिस)" विषय पर न्यूनतम २५ फुलस्केप पृष्ठों में टंकित शोधपत्र चार प्रतियों में आमन्त्रित।

४. श्रीमती कैलाश देवी तथा पुष्पालाल स्मृति स्वर्णपदक १९८९ के लिए "यूनानी में वर्मेकबिमुताद्दी का तसव्वुर (ऐलर्जी इन दि लाइट ऑफ ह्यूमेरल थियरी)" तथा १९९१ के उक्त स्वर्णपदक के लिए "मालीखोलिया (ईटियालॉजी ऐण्ड थेराप्युटिक्स ऑफ मैलेनखोलिया इन यूनानी मेडिसिन)" विषय पर न्यूनतम २५ फुलस्केप पृष्ठों में टंकित शोधपत्र चार प्रतियों में आमन्त्रित।

प्रविष्टियाँ प्रस्तुत करने की अंतिम तिथि १५ नवम्बर १९९१ है।

विज्ञापन/अका/७८–९१/१८४/९१.

(डॉ. शिवराज सिंह)
अध्यक्ष
आयुर्वेदिक एवं तिब्बी अकादमी, उ.प्र.
राजकीय आयुर्वेद महा.
तुलसीदास मार्ग, लखनऊ
पिन – २२६००४.

रक्तचाप

घरेलू चिकित्सा

डा. मायाराम उनियाल, रानीखेत

घरेलू चिकित्सा की जड़ी–बूटियों की पहचान एवं उपयोग आदिवासियों, गड़रियों एवं परम्परागत ग्रामीण क्षेत्रों के वैद्यों के माध्यम से करते हैं। कई बार जब वैज्ञानिक औषध शास्त्र मनुष्य के प्राण बचाने में असफल होता है तो भी उस समय वनेचर एवं आदिवासी ग्रामीणों में प्रचलित घरेलू उपचार रोगी के प्राण बचाने में सफल हो जाते हैं। लोक प्रचलित जड़ी–बूटियों में सर्पगन्धा नामक वनौषधि विश्व-विख्यात है जो कि रक्तचाप (हाईपरटैंशन) की कारगर औषधि है। स्थानिक भाषा में इसे धवलवरूवा, सफेदचाँद एवं पागलबूटी के नाम से जाना जाता है।

उच्चरक्तचाप (हाईपरटैंशन) मांस–मदिरा, सिगरेट के अधिक सेवन से, तीक्ष्ण मसालेदार पदार्थ खाने की आदत से, मस्तिष्क सम्बन्धी कार्य अधिक करने से, क्रोध, चिन्ता, भय, शोक आदि मनो-विकारों से एवं रक्तदुष्टि के कारण होता है। जब अन्य कतिपय कारणों से रक्त का दबाव प्राकृतिक अवस्था से कम हो जाता है तो उसे **लोब्लडप्रेशर** कहते हैं। इसका मुख्य कारण अनुचित आहार–विहार है। इसमें आहार–विहार के नियंत्रण से लाभ होता है।

लक्षण

सिर में दर्द, बेचैनी, काम करने की अनिच्छा, नींद का कम आना, मुख व नेत्र में रूक्षता, वस्तु उठाने में असमर्थता आदि लक्षण होते हैं।

गुणकारी आहार : कुछ आहार ऐसे हैं जो बढ़े हुये रक्तचाप के रोगियों के लिये हितकर हैं : जैसे : पेठा, लौकी, चिचेंडा, बन्दगोभी, कुन्दुरू, तोरई, घियातोरई, चौलाई, धनियाँ, जीरा, पुदीना, ककड़ी, गेहूँ, चावल, मूँग, नारियल, अदरख, सपरेटा दूध, शहद, मट्ठा आदि वस्तुएं हितकर हैं। ताजा एवं हल्का भोजन सेवन करना चाहिये।

हानिकारक आहार : लवण का सेवन निषेध है। दही, मांस, मछली, गुड़, केला, फ्रिज की चीजें, कस्टर्ड, आईसक्रीम, जेली, ठंडा पानी, कुल्फी, उड़द, मिठाइयाँ, शराब, तली हुई वस्तुएं, बासी भोजन, दुबारा गरम किया हुआ बासी भोजन, इमली, सिरका आदि वस्तुएं हानिकारक हैं।

गुणकारी विहार : नित्य समय पर भ्रमण, समय पर भोजन, तीव्र धूप का कम सेवन, अधिक परिश्रम न करना, थकान होने पर काम बन्द कर देना। संभोग में संयम रखें। प्राणायाम एवं ध्यान नियमित रूप से करने से लाभ मिलता है। कतिपय योगासन उच्चरक्तचाप में लाभप्रद पाये गये हैं। प्राकृतिक वेगों को न रोकें तथा मानसिक संतुलन बनाकर रखें, भूख से कम खायें। पानी पीने में संयम रखें।

घरेलू उपचार में रक्तचाप को संयमित रखने के लिए कतिपय जड़ी–बूटियाँ एवं नुस्खे नीचे बताये जा रहे हैं, जिनका उपयोग करने से लाभ मिलता है।

सर्पगन्धा : इसके मूल का चूर्ण एक से लेकर डेढ़ डेसी ग्राम की मात्रा में गुनगुने जल के साथ दिन में दो बार देने से लाभ होता है। रोगी को नींद भी ठीक आती है। अथवा सर्पगन्धा मिश्रण या सर्पगन्धा घनवटी दो गोली दिन में दो बार प्रयोग करने से लाभ देखा गया है।

अर्जुन छाल : एकौषधि प्रयोग में अर्जुन वृक्ष की छाल के चूर्ण को २ से ४ ग्राम की मात्रा में समान भाग दूध एवं चार गुना जल में क्षीरपाक विधि से तैयार कर दिन में दो बार उस दूध का सेवन करने से लाभ होता है। हृदय की गति नियमित रहती है।

जटामांसी : जटामांसी के मूल चूर्ण को एक से डेढ़ ग्राम की मात्रा में उष्ण जल में डालकर पांच मिनट तक रखकर ऊपर से

ढक दें, बाद में इस जल को छानकर दिन में २ या ३ बार पीने से लाभ होता है। एक से दो महीने तक इस जल का सेवन करें।

शंखपुष्पी : शंखाहुली के पंचागचूर्ण का श्रृतशीत कषाय या मिश्रण का प्रयोग दिन में तीन बार नियमित रूप से प्रयोग करने पर लाभ होता है।

नित्य प्रातःकाल खाली पेट बन्दगोभी प्रेशरकुकर में पकाकर उसमें हींग, सेंधानमक, जीरा मिलाकर भोजन के साथ सेवन करने से लाभ होता है। यदि कब्ज की शिकायत रहे तो उसके लिये त्रिफलाचूर्ण या मृदुविरेचक चूर्ण एवं एरण्डस्नेह का सेवन करें। भूख कम लगने पर दीपन-पाचन योगों में चित्रकादिवटी एवं लशुनादिवटी का प्रयोग करें। हृदय प्रदेश तक पहुँचने वाली रुद्राक्ष की माला धारण करने से लाभ मिलता है। अथवा रात्रि को तांबे के बर्तन में पानी में रुद्राक्ष को डालकर दिन में दो बार इस जल के सेवन करने से लाभ मिलता है।

उच्च रक्तचाप के रोगियों को संयमित आहार-विहार, ध्यान, प्राणायाम एवं योगासनों से काफी लाभ मिलता है। इन क्रियाओं के करने से मानसिक संतुलन होता है जिसके फलस्वरूप बढ़ा हुआ रक्तचाप सामान्य हो जाता है।

पृष्ठ २५ का शेष

कासनी ...

जानते हैं। जिस कासनी की ताजी पत्तियों का स्वाद मीठा होता है वह अच्छी मानी जाती है।

तासीर: ताजी कासनी की पत्तियाँ तासीर में ठंडी व नम होती हैं। इसकी जड़ की तासीर गर्म व खुश्क होती है।

औषधीय गुण व प्रयोग

सूजन कम करने, मूत्रल व रक्तशोधक गुणों के कारण यकृत, प्लीहा व आमाशय तथा मूत्र से सम्बन्धित बीमारियों में कासनी का प्रयोग किया जाता है। सूजन की तकलीफ में लाभ पाने के लिये कासनी की ताजी पत्तियों का लेप लगाकर करते हैं। सूजन में यह इसलिए लाभ करती है क्योंकि इसकी तासीर ठंडी होती है।

- कासनी पेट के दर्द में भी लाभ पहुँचाती है।
- जोड़ों के दर्द की तकलीफ में इसकी पत्तियों का लेप लगाते हैं इससे दर्द में लाभ होता है।
- कै (उल्टी) तथा दस्त की तकलीफ में पूरे पौधे को उपयोग में लाया जाता है।
- कड़वी प्रकार वाली कासनी वामक (कै कराने वाली) होने के कारण दमा में लाभ पहुँचाती है तथा बुखार व अरुचि आदि तकलीफों में भी इसको दवा के रूप में दिया जाता है।
- कासनी के बीज वातानुलोमक तथा शक्तिवर्द्धक होते हैं।
- रुके हुए या अनियमित मासिक-धर्म में कासनी के बीज का बना काढ़ा या बीज का चूर्ण दिया जाता है।
- कासनी के फूलों से बना शर्बत यकृत के रोगों विशेषकर पीलिया (इलितेहब-ए-कासनी) रोग में दिया जाता है।
- इसकी जड़ कॉफी तरह प्रयोग की जाती है।
- तेज सिरदर्द में, चंदन के लेप में कासनी का अर्क मिलाकर माथे पर लगाया जाता है इससे काफी लाभ मिलता है।
- कासनी पत्तियों को सिरका तथा गुलावजल में मिलाकर आँखें उठ आने (लाल होने) की तकलीफ में, आँख के बाहर चारों ओर लगाने से काफी लाभ मिलता है।
- स्वर यन्त्र की सूजन (गला बैठना) में कासनी का अर्क ५ ग्राम लेकर उसमें शहतूत का रस मिलाकर इसका गरारा (कुल्ला) रात में सोने से पहले करने पर काफी लाभ मिलता है। यह डिप्थीरिया (गल घोटू) रोग में भी लाभकारी है।

अनुपान : चीनी, शर्वत-ए-बनफ्शा।

बीख-ए-कासनी (कासनी की जड़)

स्वभाव : यह स्वभाव में गर्म व खुश्क होती है।

औषधीय गुण : मूत्रल, सूजन व अवरोध कम करने वाली यह दवा बलगमी बुखारों, पुराने जोड़ के दर्दों, पेशाब व माहवारी की तकलीफों के अतिरिक्त पीलिया में विशेष गुणकारी है। उपरोक्त बीमारियों में इसे शहद के साथ लेना और भी उत्तम रहता है।

बीख-ए-कासनी पुराने जोड़ के दर्दों में तो लाभकारी है ही इसके न मिलने पर बीख-ए-बादियान का प्रयोग भी किया जा सकता है।

पीलिया रोगी का आहार – विहार

वै. एस.ए.खान, लखनऊ

कामला (पीलिया) पित्त प्रधान रोग है। यह पान्डुरोग का ठीक से उपचार न करने, पित्तवर्द्धक आहार–विहार का अधिक प्रयोग करने तथा पित्तज प्रकृति के लोगों को अधिक होता है। कामला रोगी का आहार रोगी की प्रकृति, आयु, ऋतु आदि के अनुसार बदल सकता है। कामला रोगी को पित्तशामक या कफपित्त शामक आहार–विहार की राय दी जाती है।

कामला रोगी को चौलाई, नाड़ी का साग, पालक, बथुआ, पोय का साग, लाल पुनर्नवा का साग, चौलाई का साग खाना चाहिए। यह साग नरम होना चाहिए। पत्तियाँ ही विशेषकर होनी चाहिए। कड़ा कान्ड और रेशेदार भाग नहीं प्रयोग करना चाहिए।

सब्जियों में : तोरई, लौकी, कद्दू, पटोल (काँटेदार परवल), परवल, करेला, कच्चा केला का प्रयोग करना चाहिए।

ताजे फलों में : अंगूर, अनार (मीठा), सन्तरा, मीठी लीची, शहतूत, शरीफा आदि का प्रयोग करना चाहिये। काफी दिन के रखे अधसड़े या कारबाइड से पकाये फल का प्रयोग न करें। डाल के पके फल सर्वोत्तम हैं।

ताजे गन्ने चूसना चाहिये। ताजे गन्नों के टुकड़े करके रात ओस में खुले आकाश में रख देना चाहिये और प्रातः निहार मुँह इन गन्नों को चूसना चाहिये। गन्ने का रस निकाल कर पीना अधिक लाभकर नहीं। इसका प्रयोग वही लोग करें जिनके दाँत गन्ना चूसने लायक न हों। हफ्तों रखे बासी गन्नों को चूसना और उनका रस प्रयोग करना लाभ के स्थान पर हानिकर हो सकता है।

सलाद के साथ हरी धनियाँ, हरी मिर्च (जो कड़वी न हो) गोभी या पत्तागोभी, प्याज, पकी कमरख, ताजा पका काजगी नीबूं, अदरख, मीठी इमली का प्रयोग किया जा सकता है। बाल मूली का प्रयोग कर सकते हैं।

दालों में : अरहर, मसूर, मूँग, चना आदि की दालों का सूप (जूस) प्रयोग कर सकते हैं।

मसालों में : हल्दी, हरी धनियाँ, धनियाँ, लौंग, छोटी इलायची, काली मिर्च, सौंफ का प्रयोग करें। हींग, जीरा, अजवायन, मेथी, जावित्री, बड़ी इलायची, दाल चीनी आदि का प्रयोग न करें या बहुत कम करें।

सूखे मेवे : अंजीर, मुनक्का, किशमिश, गरी का प्रयोग कर सकते हैं।

सिरका, शराब, बियर, सिग्रेट, खाने–पीने की तम्बाकू का प्रयोग कतई न करें। बाजार में बिकने वाले शीतल पेय का प्रयोग न करें। घर में बनी ठन्डाई, कागजी नींबू, चीनी, काली मिर्च आदि डालकर बनाई हुई शिकंजी का प्रयोग कर सकते हैं। लस्सी का प्रयोग कर सकते हैं जबकि दही खट्टी न हो और उसमें चन्दन तेल या रूह आफज़ा जैसे औषध गुण वाले पेय पदार्थ डाले जाएं।

चिकनाई का प्रयोग : सरसों, तिल और लाही आदि का तेल न प्रयोग करें। यदि आवश्यक हो तो गाय का घी का प्रयोग करें। सब्जी भी थोड़े से गाय के घी में बनायें। वैसे तली हुई चीजों का प्रयोग न करें चाहे वे घी में ही क्यों न तली गई हों। मलाई निकाले गए दूध का प्रयोग किया जा सकता है।

आँवले का मुरब्बा और पेठा जो शुद्धता से बना हो प्रयोग किया जा सकता है। मिश्री या शकर (देशी) का प्रयोग कर सकते हैं। ताजे आँवले के फलों का प्रयोग करें।

मधु का प्रयोग कर सकते हैं। पानी को खूब अच्छी तरह उबालकर ठंडा कर लें फिर इसमें एक या दो चम्मच शहद डालकर चम्मच से हिलाकर शर्बत की तरह प्रयोग करें। मधु को गरम जल में कभी न डालें और सीधे चाटें नहीं।

पानी को इतना उबालें कि जलकर आधा या चौथाई रह जाए फिर उसे छानकर ठंडा करके पीयें। प्रातः का उबाला पानी शाम तक प्रयोग कर लें और रात में उबाला पानी प्रातः से पूर्व प्रयोग कर लें।

पुराने गेहूँ, साठी चावल, सावाँ, कोंदों, चना आदि का प्रयोग करें।

धूप, धुआँ, बदबूदार, नमी वाले, गरम

स्थानों पर वास न करें। अधिक गरम स्थान पर न रहें। धूप में अधिक समय तक न रहें।

ग्रीष्म ऋतु में हवादार, ठंडे, स्थानों में रहें।

चाँदनी रात में, खुशबूदार पौधों वाले बगीचों में खुले स्थान पर भ्रमण या वास करें।

केवड़ा, गुलाब, खस, चन्दन आदि के असली तेल का उपयोग करें। इनके सेन्टों का नहीं। गुलाबजल, केवड़ाजल, आदि का प्रयोग करें। चन्दन का लेप करें। हाथों, तलवों और सिर पर मेंहदी की ताजी पत्तियाँ पीसकर लेप करें।

कामला रोगी को निषिद्ध आहार-विहार

लाल मिर्चा, खटाई, सिरका, शराब, तम्बाकू, सिग्रेट आदि का प्रयोग न करें।

उरद की दाल या उरद की पिट्ठी से बने दही-बड़े आदि पदार्थ या अन्य गरिष्ठ पदार्थों का प्रयोग न करें।

तली हुई वस्तुओं खासतौर पर कडुवे तेल, अन्य तेलों में या डालडा में बनी वस्तुओं का प्रयोग न करें।

बिना चिकित्सक की सलाह के किसी पाचक चूर्ण का प्रयोग न करें। चाय का प्रयोग बन्द करें, या कम करें।

कसरत, मेहनत, स्त्रीसंग, यात्रा, रात में जागना, अधिक टी.वी. देखना बन्द करें।

देर में पचने वाले पदार्थ, जैसे चाट-पकौड़ी घुइयाँ, भिन्डी, कटहल, भसींडा, बड़ियाँ, सुखाई हुई सब्जियाँ आदि का प्रयोग न करें।

अचार, सिरका, नमकीन पदार्थ, खारे पदार्थों का सेवन न करें।

बाजार के पदार्थ, सड़े-गले, बासी पदार्थ (चाहे वे फ्रिज में ही क्यों न रखे हों) प्रयोग न करें।

अपनी दिनचर्या सही रखें। एक बार का खाया जब तक पच न जाए दुबारा न खाएं। समय पर दर्द निवारक या अन्य अम्लता पैदा करने वाली औषधियों का प्रयोग कम कर दें या बन्द कर दें।

पृष्ठ २८ का शेष

रीठा ...

में, ब्यूटी पार्लर में बेचा जाता है।

इधर वर्तमान समय में रीठा पर काफी अनुसंधान देश की विभिन्न प्रयोगशालाओं में किया गया है। इसी तरह का एक अनुसंधान लखनऊ स्थित केन्द्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान के कुछ वैज्ञानिकों ने किया है। रीठा में से सेपोनीन नामक रासायनिक तत्व निकालकर उससे एक गर्भनिरोधक क्रीम बनाई गई है जिसका सहवास के पहले योनि मार्ग में प्रयोग करने पर लाभ मिला है। इस क्रीम का नाम कानसेप रखा गया है। यह क्रीम निषेचन प्रक्रिया को रोककर, गर्भधारण रोकती है। प्रयोगशाला में काफी विस्तृत अध्ययन करके तथा शुक्राणु को अति विस्तृत आधुनिक सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा देखने पर यह जानकारी मिलती है कि सेपोनीन, शुक्राणु को निष्क्रिय कर देता है जिससे निषेचन नहीं हो पाता। इस जानकारी के अलावा अनुसंधान से यह भी पता चला है कि सेपोनीन नामक रासायनिक तत्व रक्त जमने की प्रक्रिया को भी रोकती है।

इस तरह के अनुसंधान एक बार फिर यह सिद्ध करते हैं कि हमारी देशी परंपराओं में ऐसी बहुत सी लाभदायक जानकारियाँ मौजूद हैं जिनका उपयोग करके न केवल देश में स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण की कई समस्याओं का निदान कर सकते हैं वरन् उस जानकारी के आधार पर विश्व के बाजारों में अपने पदार्थों का निर्यात करके विदेशी मुद्रा का अर्जन भी किया जा सकता है।

फीलपांव अनुभूत योग

फीलपांव (फाइलेरिया) में सिहोड़े (शाखोट, स्ट्रेब्लस ऐस्पर) की छाल को पाव भर पानी में मंदी आंच पर पकायें। चौथाई जल शेष रहने पर छान लें और उस गरम जल में गाय की बछिया का आधा छटांक मूत्र डाल दें। ठंडा होने पर छानकर पूरा का पूरा रोगी को एक ही बार में पिला दें। सुबह शाम एक-एक गोली नित्यानंद रस खिलायें साथ ही सूजन पर सिहोड़े की छाल, गोमूत्र एवं देशी गाय के घी में हलुवा बनाकर लेप करें। २१ दिन तक यह प्रयोग करेंगे तो रोग जड़ से जाता रहेगा।

वैद्य रंगीराम विश्वकर्मा, वाराणसी

एक पारम्परिक वैद्य से साक्षात्कार

"कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कै हित होई।।"

उत्तर प्रदेश के शाहजहाँपुर जिले में एक पारम्परिक वैद्य सरदार हरदीप सिंह, काफी लम्बे समय से लोगों का निःशुल्क इलाज करते आ रहे हैं। पाकिस्तान में गुरुनानक साहब के जन्मस्थल ननकाना साहब शहर में जन्में वैद्य जी ने वहीं दसवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की थी। वैद्य जी का कुछ प्रमुख रोगों जैसे – गठियाबाई का दर्द, साँस का फूलना, पेट में गैस बनना, आधे सिर का दर्द, मोटापा, सूजन, हाथ–पैर टेढ़े पड़ जाना आदि के इलाज में सफलता का दावा है। उनके इस अनुभव से रोगियों को लाभान्वित कराने हेतु लखनऊ में स्थित जीवनीय कार्यालय में दिनांक २८–५–९१ को एक स्वास्थ्य शिविर भी लगाया गया था। उस शिविर का प्रमुख आकर्षण वैद्य जी द्वारा रोगियों को मुफ्त दवा वितरण था। इस अवसर पर वैद्य जी के साथ हुए साक्षात्कार को जीवनीय के पाठकों के लिये इस अंक में प्रस्तुत कर रहे हैं।

प्रश्न : आपकी प्रमुख रोगों के निदान की सफलता को देखकर यह प्रश्न उठता है कि आपने किस गुरू के सान्निध्य में वैद्यक की शिक्षा ली है?

वैद्य जी : मेरे गुरू हमारे परिवार के सदस्य मेरे चाचा जी (स्व. राजेन्द्र सिंह) ही थे, जो खुद ननकाना साहब शहर के प्रसिद्ध वैद्य थे। मैं अपने चाचा जी के साथ रहा करता था, उन्हीं के साथ जाकर जड़ी–बूटियों को एकत्र करना, सुखाना, कूटना–पीसना, काढ़ा तथा गोलियाँ बनवाना आदि औषधि निर्माण के सारे कार्य करता था। चाचा जी की जड़ी–बूटियों के बारे में जानकारी और रोगियों की मुफ्त चिकित्सा ने मुझे बहुत प्रभावित किया जिससे मैंने इस क्षेत्र में कार्य करना आरम्भ किया।

प्रश्न : आपका चिकित्सकीय अनुभव किस प्रकार हुआ?

वैद्य जी : गठिया रोग की दवा की जानकारी मुझे मेरे मामा जी (सरदार गंडा सिंह) द्वारा प्राप्त हुई। इसके अलावा उर्दू भाषा में प्रकाशित कुछ पुरानी पुस्तकों को पढ़ने से भी जड़ी–बूटियों की गुणवत्ता की जानकारी हासिल हुई।

वैद्य जी ने आगे बताया कि उनके मामा जी ने उनको गठिया रोग की दवा बृहस्पतिवार के दिन न देने व निःशुल्क सेवा करने की सलाह दी थी जिसका वह पालन भी कर रहे हैं।

"निःशुल्क सेवा
चाचा का सानिध्य
मामा की सलाह
सरल भोजन, घी, दूध .... सेवन"

प्रश्न : वैद्य जी! आपको किसी रोग विशेष की चिकित्सा में दक्षता है?

वैद्य जी : प्रायः सभी रोगों में।

प्रश्न : चिकित्सा के क्षेत्र में कोई विशेष अनुभव?

वैद्य जी : इतने लम्बे चिकित्सकीय कार्य के दौरान एक कुष्ठ रोगी चारों ओर से निराश होकर मेरे पास इलाज के लिए आया। उसको हर प्रकार की चिकित्सा पद्धति द्वारा इलाज कराने पर भी असफलता का सामना करना पड़ा था और वह अपने कुष्ठ रोग का कारण अंग्रेज़ी दवाओं के कुप्रभाव को मानता था, उसका परीक्षण करने के बाद उसको लगाने और खाने के लिये तीन दिन की औषधियाँ दीं, इससे रोगी को काफी लाभ हुआ।

इसके अलावा मेरा दूसरा विशेष अनुभव नशीली दवाओं के व्यसन को छुड़वाने के क्षेत्र में है।

प्रश्न : क्या आप जीवनीय के पाठकों के लिये अपने विशेष अनुभूत सरल योग (औषधीय) बतायेंगे, जो प्राथमिक स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभकारी हो?

वैद्य जी : मैं अपने दुष्कर योगों को आम नहीं कर सकता हूँ लेकिन फिर भी पाठकों को एक–दो सरल बातें अवश्य ही बताना चाहूँगा जैसे –

गला बैठना : यह एक सामान्य रोग है। इस रोग में शहद व प्याज का रस बराबर मात्रा में मिलाकर, गर्म करके आधा–आधा चम्मच दिन में चार बार, दो–तीन दिन तक लगातार लेने से लाभ होता है।

इसके अतिरिक्त अपने को बीमारियों से बचाने के लिये सादा भोजन, घी एवं दूध का सेवन सबसे सर्वोत्तम घरेलू नुस्खा है।

प्रश्नः वैद्य जी! आपको विशेष सन्तोष कब मिलता है?

वैद्य जी: जब मेरा रोगी मेरे इलाज से पूर्णतः ठीक हो जाता है।

प्रश्न : आपके विचार में वर्तमान समय में आयुर्वेद/पारम्परिक चिकित्सा क्षेत्र की क्या समस्याएँ हैं?

वैद्य जी: शुद्ध वनौषधि न मिलने के कारण आजकल औषधि निर्माण कार्य में काफी परेशानियाँ सामने आती हैं।

प्रश्न : इन कठिनाइयों के निराकरण के आपकी नजर में क्या उपाय हैं?

वैद्य जी : मेरे विचार से वैद्य लोगों को अपनी वाटिकाओं में, घर के आस-पास की खाली जगह में वनौषधि का एक उद्यान लगाना चाहिए ताकि शुद्ध वनौषधियाँ मिल सकें।

प्रश्न : क्या आप अपनी दवाइयों में वनौषधियों के अतिरिक्त और कुछ डालते हैं?

वैद्य जी : हमारी दवाइयाँ अधिकतर जड़ी-बूटियों से बनती हैं लेकिन मेरी दवाइयाँ प्रायः शरीर में खुश्की पैदा करती हैं अतः अनुपान के लिए घी का सेवन करना चाहिए। घी लेते रहने से खुश्की नहीं होती है।

प्रश्न : आपने इस ज्ञान और चिकित्सा परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए क्या कोई शिष्य बनाया है?

वैद्य जी : हाँ, मैंने अपना शिष्य अपनी पुत्र-वधू को बनाया है। वह काफी समय से मुझे मदद कर रही है और अब दवा-निर्माण की देख-रेख वह स्वयं ही करती है। यह औषधि-निर्माण व वितरण का कार्य मैं अपने खर्चे से लगभग बारह वर्षों से कर रहा हूँ।

प्रिय पाठक - यह नया स्तम्भ ***"सफल वैद्यों कासाक्षात्कार"*** *प्रकाशित करने का उद्देश्य आप को उनके अनुभवों से अवगत कराना मात्र है। हमारा यह कदम उनके प्रचार के लिए कदापि नहीं है। हमारा प्रयत्न भविष्य में भी इस तरह के लेखों को प्रकाशित करने का रहेगा।*

ग्रहों का शरीर पर प्रभाव

पं. काशीनाथ गोपाल गोरे, लखनऊ

हमारे भूमण्डल का जीवनदाता सूर्य है। हमारे सौर जगत में सभी ग्रह सूर्य का परिभ्रमण करते हैं। सूर्य से ही हमें गर्मी और प्रकाश प्राप्त होते हैं तथा सूर्य की प्रदक्षिणा करने से सूर्य की दिशा में पृथ्वी की जो भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ होती हैं, उन्हीं के कारण ऋतुएँ अस्तित्व में आती हैं। इससे स्पस्ट है कि सूर्य हमारे जीवन में सबसे महत्वपूर्ण ग्रह है। सूर्य जीवनदाता, चैतन्यमय, शुष्क, उष्ण और उत्पत्तिमूलक है। सूर्य मनुष्य शरीर में हृदय, जीवनी शक्ति, रक्त, मस्तिष्क और पुरुष की दाहिनी आँख और स्त्री की बाईं आँख का अधिष्ठाता है। सूर्य पुरुष का नियन्त्रक है। चन्द्रमा सभी ग्रहों से पृथ्वी के अत्यन्त निकट है। इस कारण उसका गुरुत्वाकर्षण अन्य ग्रहों की तुलना में सर्वाधिक है। निकटता के कारण पृथ्वी से उसका बिम्ब सबसे बड़ा दिखाई देता है और चन्द्रमा से सूर्य के प्रकाश का परावर्तन भी पृथ्वी पर बहुत अधिक होता है। इन कारणों से मनुष्य पर चन्द्रमा का प्रभाव बहुत अधिक होता है। चन्द्रमा स्त्री का नियन्त्रक है। यह ठंडा व नम है। स्तन, शरीर के प्राकृतिक कार्य, समस्त रस, स्त्री की दाहिनी और पुरुष की बाईं आँख का अधिष्ठाता है। शास्त्रों में चन्द्रमा को रसों, वनस्पतियों का राजा कहा गया है।

मंगल : उष्ण, शुष्क और दाहक है। यह नाक, भाल, पित्त, स्नायु संस्थान, अण्डकोश, क्षत, मज्जा आदि का अधिष्ठाता है।

बुध : मस्तिष्क, बुद्धि आदि का अधिष्ठाता है। बुध जिस ग्रह के साथ या दृष्टि में या स्थान में होता है उससे प्रभावित हो जाता है। फुफ्फुस, जीभ, वाणी, हाथ, बाहु, मुख और केश इसके प्रभाव में हैं।

बृहस्पति : सौम्य, उष्ण और नम प्रकृति का है। रक्त, बीज, यकृत, नाड़ी, कर्ण आदि इसके प्रभाव में हैं।

शुक्र : उष्ण, नम प्रकृति का है और गला, हनु, वर्ण, गाल, नाभि और प्रजनन के बाह्य अंग इसके प्रभाव में हैं।

शनि : ठंडा, रूक्ष, संकोच और बाधक प्रकृति, तथा अस्थि, सन्धियों, प्लीहा, दन्त, घुटनों, श्लेष्मा और मल निकासी पर प्रभाव रखता है।

(क्रमशः)

पत्र-पत्रिकाओं से

सहिजन के बीजों से प्रदूषित जल का निवारण

सहिजन की फलियों को भारत में व्यापक रूप से सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता है। अब इसकी सम्भावना है कि इस घरेलू पौधे के उपयोग से विकासशील देशों के करोड़ों लोगों को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराया जा सकेगा। सहिजन के सूखे बीजों को कूटकर पानी में डालने से पानी में मौजूद सूक्ष्म पदार्थ आपस में जुड़कर बड़े-बड़े पिंड बन जाते हैं जिन्हें छानकर अलग किया जा सकता है। ऐसा इंग्लैण्ड के "न्यू साइंटिस्ट" पत्रिका में प्रकाशित एक लेख में दिया है। जीवाणुओं से प्रदूषित पानी पर भी सहिजन का अच्छा प्रभाव पड़ता है। जीवाणुओं को निष्क्रिय करने और उनके प्रजनन को रोकने में यह सक्षम है। विषाणुओं पर इन बीजों के प्रभाव पर भी विचार हो रहा है। पोलियो आदि भयंकर बीमारियों का कारण बनने वाले विषाणुओं पर सहिजन के प्रभाव पर विशेष कार्य हो रहा है। सूडान में महिलाएँ मटकों को छलकने से रोकने के लिए उनके मुँह को पत्तों से ढक दिया करती थीं। अनुभव से उन्होंने सीखा कि किसी-किसी पेड़ के पत्तों का उपयोग करने पर पानी का स्वाद मीठा हो जाता है।

दैनिक जागरण, लखनऊ १९ जुलाई १९९१

भारतीय महिलाओं में बढ़ता हुआ हार्ट-अटैक

गत सप्ताह दिल्ली मेडिकल ऐसोशियेशन तथा हार्ट केयर फाउन्डेशन ऑफ इण्डिया द्वारा आयोजित एक सभा में यह बताया गया कि हृदय रोग आजकल भयंकर रूप से महिलाओं पर आक्रमण कर रहा है। विशेषज्ञों तथा सहचिकित्सा कर्मियों ने रोगियों की जाँच के बाद यह बताया कि दिल की तकलीफों का मुख्य कारण यह हैं कि उनमें धूम्रपान की आदत बढ़ रही है। पहले से अधिक महिलाएं बाहर कामकाज करने लगी हैं, जिससे वह ज्यादा तनावग्रस्त हो जाती हैं। कुछ स्त्रियों द्वारा डॉक्टर की सलाह के बिना गर्भनिरोधक गोलियाँ लेने से भी हृदय-रोग का खतरा बढ़ता जा रहा है। यह विचार भी व्यक्त किया गया कि कोलेस्ट्रॉल की मात्रा हृदय-रोग के लिए मुख्यतः जिम्मेदार होती है। कोलेस्ट्रॉल को कम करने के लिए लोगों को सलाह दी कि वह शाकाहारी भोजन व रेशेवाले पदार्थों का सेवन करें।

हिन्दुस्तान आयुर्वेदिक टाइम्स, अंक जुलाई १९९१

लसिका ग्रन्थियों की टी.बी. : तपेदिक का एक अन्य रूप

तपेदिक (क्षयरोग) के जीवाणु (माइकोबैक्टेरियम ट्युबरकुलोसिस) शरीर के किसी भी अंग में प्रवेश करके उक्त रोग उत्पन्न कर सकते हैं। परन्तु फेफड़ों में यह रोग सबसे अधिक होता है। शरीर की प्रतिरक्षण क्षमता को अक्षुण्ण बनाये रखने हेतु इसमें लसिका तन्त्र कार्यरत रहता है जिसके अन्तर्गत हमारे पूरे शरीर में लसिका वाहिनियों एवं लसिका ग्रन्थियों का जाल बिछा रहता है। जिसमें परिसंचरण हेतु लसिका (लिम्फ) नामक द्रव होता है। क्षय रोग के जीवाणु सर्वप्रथम श्वसन द्वारा फेफड़ों में फैल जाते हैं। शरीर की प्रतिरक्षण क्षमता के अनुरूप ही फेफड़ों तथा अन्य अंगों की बीमारी का होना निर्भर करता है।

जैवीय क्रियाओं के फलस्वरूप प्रभावित लसिका ग्रन्थियों का आकार बढ़ने लगता है। वक्ष के अन्तः भागों में स्थित लसिका ग्रन्थि समूहों के अतिरिक्त उग्र एवं पश्च ग्रीवा, बगलों, पेड़ू, उपस्थ आदि समूहों की गाँठें बढ़ने लगती हैं, जिन्हें टटोलकर देखा जा सकता है। अधिकतर ग्रन्थियों में वृद्धि धीरे-धीरे होती है जो तपेदिक के एक और लक्षण "लम्बी अवधि" को बनाये रखती है। ये गाँठें दर्द विहीन अथवा अल्प पीड़ा युक्त होती हैं।

इसके लिए रक्त की जाँच, सीने का एक्स-रे, प्रभावित ग्रन्थि की सुई से ऊतकीय/कोशिकीय जाँच, बलगम की जाँच, ग्रन्थि की शल्य क्रिया करने के बाद उपचार शुरू होता है। उपरोक्त जाँचों से लसिका ग्रन्थि की टी.बी. का निदान होने के पश्चात् दो अथवा तीन तपेदिक प्रतिरोधी औषधियों का मेल शुरू करते हैं।

दैनिक जागरण, १० जुलाई १९९१

मधु संचय

पहाड़ी बूटी का बीज : निर्मली

निर्मली का बीज आमतौर पर पंसारियों के यहाँ बहुत कम कीमत में मिल जाता है। यह अनेक रोगों की रामबाण दवा है। बिच्छू, मधुमक्खी तथा चीटीं या अन्य किसी जहरीले कीड़े (सांप छोड़कर) के काटने पर निर्मली के बीज को साफ करके पत्थर पर घिस कर लगाया जाता है। आँख का पुराने से पुराना रोग, मोतिया बिन्दु या जाला हो गया हो तो इसके बीज पानी के साथ घिस कर आँख में लगाया जाता है। इसके अतिरिक्त दमा तथा महिलाओं से सम्बन्धित कई रोगो में भी इसका खुलकर प्रयोग किया जाता है।

हैल्थ, अंक ६, १९९१

बुढ़ापा : जरूरी हैं कुछ सावधानियां

अपनी शारीरिक क्षमताओं में कमी के कारण वृद्धावस्था में लोग अपने आपको सबसे अलग-थलग व असहाय महसूस करते हैं। इसका मुख्य कारण इंद्रियों की क्षमता का घटना और मांसपेशियों का कमजोर होना माना गया है।

पैंसठ वर्ष से अधिक उम्र के आधे से ज्यादा लोगों की आँखें कमजोर होती है और करीब एक तिहाई लोगों की श्रवण शक्ति तथा त्वचा की संवेदन शीलता भी घट जाती है। शरीर के जो अंग हमें खड़े होते समय या कोई कार्य करते समय शारीरिक संतुलन बनाए रखने में मदद करते हैं वे भी बुढ़ापे में कम क्रियाशील हो जाते हैं। बुढ़ापे में प्रायः स्वाद और गंध भी पूरी तरह महसूस नहीं होती है।

लेकिन आज के युग में अधिकांश शारीरिक अक्षमताओं से उबरने का कोई न कोई तरीका उपलब्ध है। जैसे कमजोर आँखों के लिए चश्मा या पढ़ने के लिए हाथ में पकड़ने वाले लेंस। पूर्व में प्रचलित श्रवण मशीनों में माइक्रो फोन और एम्पलीफायर, सुनने की समस्या को कम कर सकता है। धीरे-धीरे चलना और छड़ी का इस्तेमाल भी उपयोगी सुझाव है।

स्वास्थ्य आलोक, जुलाई १९९१

कैंसर विरोधी सब्जियाँ

पिछले कुछ समय में पश्चिमी देशों में उन सब्जियों का सेवन काफी बढ़ गया है जिनमें बीटा कैरोटीन नाम पौष्टिक तत्व होता है। बहुत से लोग इसके लिये गोलियाँ भी लेते हैं जो अनेक नामों से बाजार में उपलब्ध हैं। किन्तु कुछ विशेषज्ञों का कहना है कि कई सब्जियों में पाया जाने वाला कैरोटिनॉयड नामक रसायन भी आपके स्वास्थ्य की रक्षा बीटा कैरोटीन की ही तरह करता है। इन दोनों का सबसे बड़ा गुण यह है कि ये हमें कैंसर जैसे भयानक रोग से भी बचाते हैं।

स्वास्थ्य आलोक, जुलाई १९९१

स्वस्थ एवं निरोगी जीवन के लिए
लोक स्वास्थ्य की द्वैमासिक पत्रिका

जीवनीय

के नियमित पाठक बनें
पता : ई - III/ २५०, सेक्टर एच,
अलीगंज लखनऊ - २२६०२०

पृष्ठ ३५ का शेष

एविसिना

व्रणरोपण विषय पर रोचक टिप्पणी की। इस पुस्तक में मधुमेह रोग पर भी विस्तृत ब्योरा उपलब्ध है।

संक्षेप में इस पुस्तक में आंत्रिक रोग-विकार, रतिज बीमारियां आदि के समुचित लक्षण दिये हैं। खसरा एवं चेचक आदि बीमारियों के संदर्भ में भी इस पुस्तक में समुचित ज्ञान दिया है। एविसिना ने सर्वप्रथम यह सिद्ध किया कि फेफड़ों का क्षय रोग सांसर्गिक है। इसमें शिशु, स्त्री रोगों का विवरण भी है। फलतः इस पुस्तक में औषधि, वानस्पतिक एवं रासायनिक पदार्थों आदि का समुचित विवरण उपलब्ध है।

एविसिना का चिकित्सा सिद्धान्त आज भी उसी प्रकार प्रयोज्य है। वह दवा के दुरुपयोग के विरुद्ध था। उसने उचित भोजन एवं संयमित आहार-विहार का अनुमोदन किया। एविसिना का कथन है कि शारीरिक स्वस्थता हेतु उष्ण हृदय, निस्तेज शिरा तथा नीरस अस्थि का होना अनिवार्य है। यूनानी पद्धति का यह सिद्धान्त आज भी उपयुक्त है।

एविसिना ने अपने समय के सम्पूर्ण ज्ञान को संग्रहीत एवं संकलित किया। दर्शन शास्त्र, मनोविज्ञान, अन्तरिक्ष विज्ञान, तर्क शास्त्र, नीति शास्त्र, सैनिक कला, चिकित्सा शास्त्र, अरबी, व्याकरण, काव्यकला आदि विषयों पर उसे व्यापक ज्ञान था। एविसिना को भूगर्भशास्त्र का जनक भी माना गया है। एविसिना की अन्य पन्द्रह चिकित्सीय पुस्तकें तथा विभिन्न विषयों पर उसके लिखे लेख उसे और भी गौरवान्वित करते हैं। एविसिना को कुछ विद्वानों ने पर्शियन गैलेन की उपाधि दी। १०३७ ई. में मात्र सतावन वर्ष की अवस्था में इस चिकित्सा के गौरव का अन्त हो गया। पश्चिमी ईरान (नवीन) में स्थित हमदान नामक स्थान पर उसकी समाधि आज भी एक तीर्थ स्थान बनी हुई है। यहाँ लोग समूह में एकत्र हो इस महान प्रतिभावान दार्शनिक एवं चिकित्सक को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

अपच के कारण

"ईर्ष्याभयक्रोधसमन्वितेन, लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन।
विद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानम् अन्नं न सम्यक् परिपाकमेति।।"

(वैद्यकीय सुभाषित साहित्य अ. १३।४२)

ईर्ष्या, भय, क्रोध, लोभ, रुग्णावस्था, द्वेष आदि से मन ग्रस्त होने पर भोजन करने से अन्न ठीक प्रकार से नहीं पचता।

आपके अनुभव

जैसा हम समय-समय पर अपने पाठकों से अनुरोध करते रहे हैं, हम प्राथमिक स्वास्थ्य संबंधी आपके अनुभवों का विशेष स्वागत करते हैं। यदि आपने जीवनीय में उल्लिखित या अन्यथा प्राप्त जानकारी के आधार पर कुछ लाभकारी या हानिकारक अनुभव किए हैं तो हमें आपसे अपेक्षा है कि आप अपने अनुभवों को हमें अवश्य लिखें ताकि उनसे अन्य पाठक भी लाभ उठा सकें।

- संपादक मंडल

हमें एजेंट चाहिए

जीवनीय के हिंदी व अंग्रेजी दोनों संस्करणों के व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए हमें अपने पाठकों व अन्य एजेंटों की मदद चाहिए है। हमें आशा है कि आप हमें इसकी खुदरा बिक्री व वार्षिक चन्दे इकट्ठे करने में मदद करेंगे। इस कार्य के लिए हम उपयुक्त कमीशन देने को तैयार हैं। इच्छुक व्यक्ति सम्बन्धित शर्तों के लिए कृपया निम्न पते पर सम्पर्क करें।

वितरण मैनेजर, जीवनीय
ई-III/२५०, सेक्टर एच,
अलीगंज, लखनऊ - २२६ ०२०

शब्दकोश

पं. काशीनाथ गोपाल गोरे, लखनऊ

अपचय : कृशता, कमी होना।

आर्जव : ऋजुता, सरलता।

अस्तेय : चोरी न करना, किसी दूसरे का भाग न लेना।

अभिष्यन्द : स्राव, बहना, पानी निकलना।

आध्मान : पेट में वायु का अति संचय।

उपलेप : लेप, आवरण।

क्षुप : पौधा।

गण्डूष : मुँह में भरा हुआ द्रव, कुल्ला।

ग्रहणी : नाभि के ऊपर पेट में आहार का स्थान। ग्रहणी अग्नि का अधिष्ठान है। इसके अलावा ग्रहणी एक रोग भी है।

चय : अपने स्थान में दोष का संचय (एकत्र होना, बढ़ना)।

चक्षुष्य : आँखों के लिये हितकरी, अंजनादि।

जठरांत्रपथ : पेट में आँत का मार्ग।

निर्यास : वृक्षादि से निकलने वाला चिकना पदार्थ, गोंद आदि।

प्रतिश्याय : नाक से पानी बहना, शिरःशूल, जुकाम।

मसृण : चिकना, मृदु।

मुखपाक : मुँह के भीतर व्रण होकर पानी निकलना।

मेध्य : धान्यवर्ग में जौ। वनस्पति में कत्था। मेधा (बुद्धि) बढ़ाने वाली औषधि।

रक्तवह स्रोतादुष्टि : रुधिर वहन करने वाली वाहिकाओं आदि में विकार। रक्त का मूल स्थान यकृत और प्लीहा हैं, अतः उन में विकार भी इसी श्रेणी में हैं।

रक्त प्रदर : योनिमार्ग से रज या रक्त का असामान्य स्राव।

रोपण : व्रण को अच्छा करने वाली, ऊपर लगने की औषधि।

लघुता : हलकापन।

लेखन : पतलाकर या खुरचकर निकालना।

विपाक : जठराग्नि द्वारा आहार में लिये गये रसों का पचन होकर जो अन्य रस उत्पन्न होता है, उसे विपाक कहते हैं।

वाजीकरण : पुरुषत्व बढ़ाना।

शोधन : शरीर से दोषों को बाहर निकालने की चिकित्सा।

पृष्ठ ३७ का शेष

कैंसर...

९. श्रीमती करुणा मिश्र, पत्नी श्री बी.एस. मिश्र, एकाउन्टेण्ट, आई.जी. ऑफिस, लखनऊ	पेट का कैंसर। इलाज से काफी लाभ। मरीज अभी भी स्वस्थ।
१०. श्रीमती चन्द्रकला, द्वारा श्री डी.एस. मिश्र, एच.ए.एल. क्वार्टर, लखनऊ	गर्भाशय का कैंसर। सितम्बर ९० से इलाज। मरीज अभी भी स्वस्थ।
११. नवाब कैसर अली खाँ, गुलाब सिनेमा के पीछे, गोलागंज, लखनऊ	खाने की नली का कैंसर। ३ माह के इलाज से ही लाभ। अभी भी स्वस्थ।

हमनें इनमें से कुछ मरीजों के सम्बन्धियों आदि से बातचीत में पाया कि औषधि का प्रभाव काफी जल्दी शुरू हो जाता है पर रोगी के पूर्णतया स्वस्थ होने की जाँच पूरी नहीं की गई है अतः निर्णायक तौर पर कुछ कहना असम्भव है। वैसे भी कई मरीज लाभ होने पर और अधिक जाँच परीक्षण से कतराते हैं। वैद्य अेतीक का मानना है कि कैंसर के फोड़े को शल्य चिकित्सा से छेड़ने से (बायोप्सी) हानि होने की सम्भावना रहती है।

(सम्पादक)

मस्तरामजी

कथा : पं० काशीनाथ गोरे
चित्र : सन्दीप सेन

.. बेचैनी आदि इसके लक्षण है !
वैद्यजी, अपच से छुटकारे का सरल उपाय बताएं
.. प्रारम्भ में लंघन सर्वोतम उपाय है.
..लंघन से जठराग्नि प्रज्वलित होती है.
इस अवधि में गुनगुना पानी पिएं..
गरम पानी में सोंठ या लौंग उबालने से वह गुणकारी होता है.
..अजवायन, अदरख व नीबू का प्रयोग भी लाभकारी है.. ..अमृतधारा लाभप्रद है..
"भूख लगने पर मूंग की दाल, नरम चावल, घी ले लेना चाहिए."
यदि तीन दिनों तक स्थिति में सुधार न हो तो वैद्य का परामर्श लेना चाहिए.
अजीर्ण और अग्निमांध अनेक रोगो का कारण है.
यदि इस पर काबू पा लें अर्थात परहेज से रहें तो अनेक रोगों से बचा जा सकता है.
वैद्यजी ! आपने बड़ी अच्छी बातें बताई.. अब हम इस पर हमेशा अमल करेंगे.!
इति

रजिस्ट्रेशन न. ५११०३/९०

Introducing...

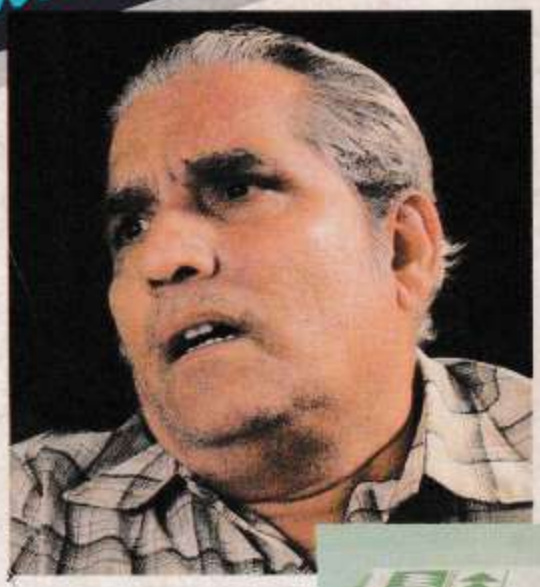

ALL ROUND EFFECTIVE HERBAL MEDICAMENT FOR ALLERGIC RHINITIS & BRONCHIAL ASTHMA....

RESPINORM

The potent herbal drug with proven ability to act at various causes which lead to bronchial asthma, bronchitis, allergic rhinitis and other allergic conditions.

HOW RESPINORM ACTS ?

RESPINORM - decreases bronchial spasm.

RESPINORM - is immunomodulator.

RESPINORM - has antistress principle.

RESPINORM - has mucolytic action.

RESPINORM - is an antihistaminic drug.

RESPINORM - has antimicrobial effect.

For further information please fill up the coupon and mail it to us.

HERBAL CELL
CADILA LABORATORIES LIMITED
244, Ghodasar, Maninagar, Ahmedabad 380 050 INDIA

Yes, I want more information on RESPINORM

Dr. .....

Area of Specialization .....

Address .....

.....

..... Pin Code

Hospital/Institute/Clinic

CL/HERB/91/1

Marketed by :
ALIDAC GENETICS & PHARMACEUTICALS
244, Ghodasar, Maninagar, Ahmedabad 380 050
Mfd. By : **CADILA LABORATORIES LIMITED**
244, Ghodasar, Maninagar, Ahmedabad 380 050

ALIDAC